

सदयवत्स सावर्लिगा प्रेम-कथा-सम्बन्धी एक अज्ञात रचना

—श्री अग्रचन्द नाहटा

मदयवत्स और सावर्लिगा की प्रेम-कथा काफी प्राचीन है और उसके अनेक रूपान्तर प्राप्त होते हैं। १६ वर्ष पूर्व इस कथा और उसके रूपान्तरों के सम्बन्ध में मेरा एक विस्तृत लेख 'राजस्थान भारती' अप्रैल १९५० के अङ्क में प्रकाशित हुआ था। उसके बाद भी योज चातू ही रही और उस लेख में सूचित रूपान्तरों के अतिरिक्त और भी कई रचनाएँ प्राप्त हो रही हैं। उन सबकी जानकारी तो अन्य किसी लेख में दी जायगी। प्रस्तुत लेख में हाल ही में प्राप्त एक अज्ञात पद्यवद् कथा का मक्षित विवरण दिया जा रहा है। गद्य-पद्य-मिश्रित और केवल दोहों वाले रूपान्तर तो कई प्रकार के प्राप्त हो चुके हैं। पर पद्य काव्य के रूप में जो रचनाएँ प्राप्त हुई थी, उन्हें मैंने मादुल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट से प्रकाशित 'मदय-वत्स वीर प्रबन्ध' जो इस कथा के सम्बन्ध में प्राचीन राजस्थानी व गुजराती का सबसे पहला काव्य है और उसे डा० मजुलाल मजूमदार के संपादन में प्रकाशित किया जा चुका है, अर्थात् उस ग्रन्थ के परिशिष्ट में 'सदयवत्स सावर्लिगा पाणिग्रहण चौपाई' तथा तथा जैन मुनि केशव-रचित मदयवत्स सावर्लिगा चौपाई भी प्रकाशित कर दी गई हैं। कुछ महीने हुए, अहमदाबाद जाने पर मुनि पुण्य विजय जी के संग्रह के गुटकों को देखने का अवसर मिला तो उनमें से एक गुटके में ४२८ पद्यों की एक और अज्ञात रचना देखने को मिली। उसी का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

इस रचना के अन्त में रचना-काल-मूचक एक दोहा इस प्रकार मिलता है—

नवत आठ सत्ताणुंई,
माह सुद पांचममान ।
बात सपूरण तिहाँ करी,
सधकवित ममान ॥

इस पद्य में ८६७ संवत् का उल्लेख किया है, पर वह संभव नहीं। १८६५ भी नहीं हो सकता क्योंकि प्राप्त प्रति इससे पहले की लिखी है। रचना की भाषा को देखते हुए यह रचना अधिक प्राचीन भी नहीं लगती। प्रति १८ सौ के लगभग की लिखी हुई है। अतः प्रस्तुत रचना संवत् १७६७ की हो सकती है। पालनपुर राधनपुर आदि गुजरात के स्थानों में इस प्रति में लिखित रचनाओं का लेखन, समय-समय पर होता रहा है। गुटका की यह सग्रह प्रति किसी जैन यति की लिखी हुई है। इसमें जैन और जैनैतर कवियों की लिखी हुई कई रचनाएँ हैं। जिनमें से प्रेम-गीता संवत् १७६६ की जैनैतर कवि की रचना है। इसके अन्त में लेखन संवत् १८२५ वैसाख सुदी १५ शनिवार का उल्लेख है। इसके बाद 'नरसी मेहता का माहेरा' लिखा हुआ है। उसमें लेखन-स्थान राधनपुर बताया है। जबकि 'सदयवत्स की बात पालनपुर में लिखी गई है। इसमें दोहा, कवित्त, चन्द्रायणा, गाथा आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। वैसे सबसे अधिक दोहा व चन्द्रायणा ही हैं। पर रचना के अन्त में 'दूहा कवित्त' का उल्लेख किया गया है। प्राप्त रचना के आदि और अन्त के कुछ पत्र नीचे दिये जा रहे हैं। प्रति के बीच के १८ पद्यों में यह रचना लिखी गई है। इसमें कई दोहे आदि पद्य तो अन्य रचनाओं में

भी प्राप्त होते हैं। निर्माता ने अपना नामोन्मेष नहीं प्राप्ति में बलिदान दिया था। पर हीरे में रक्त किया। मालूम होता है किनी ने कुछ पुराने पद्यों में मर्यादा प्रमित गाथा लिखी थी। अपने पद्यों को जोड़ कर इसे यह रूप दे दिया है।

आदि प्रथम मध्यवर्ती वान निम्नलिखिते ।

गाथा—

+ मालवपुर नामे नगर धानिवाहन राम मन्त्रिय पदम् ।
मुदेवच्छगय नन्दन, गावन्निगा मन्त्री मुद्राय ॥

पद्यित्त—

सात सात मंडग, पयग पट पोहग पदम् ।
पाच नास पाचक, मुभट एक एकाग्रर ॥
दल चलता घणपार, धरा घम घमकारह ।
नालिवाहन नमचटे, भीमन भन्ने भागह ॥
गन गुज रत्न गीतम हरे, घाय नाम घमर कीरी ।
उचली धरा उजेण धर, वड़े राय दीकम दीड ॥
कु कण दमण कुंज, काछ पंचाल नरनर ।
स्वेत वन्ध रामेस, सोरठ नव सातेपर ॥
भाड छठ मेवाड, गंड गुजर पीरागर ।
पागठ महिदल मध, तेउ प्रायो पारावर ॥
मुरधरा देस भावू भदल, छप्पन पानईटर चने ।
एतली सालवाहन घोहल, तेम भुजादन भोगवें ॥२॥
पस्तुरी कपूर, घग घग्दन चरचार् ।
पानफूल तबोल, हाटपाटण भुजार् ॥
वर्ण एता यामणा, दानदेण भागण हाग ।
सोना उल संघरा, ताम घाम सोपारा ।
पहगोहल नरेस परठाण पन, गरी की उज्जधरा ।
सो नास द्रव्य दलमें, नालवाहन एकरागद ॥३॥ ।

+ हमारे समूह की एक प्राचीन प्रति में यह पद्य इस प्रकार है—

कुंज विजय नगर, महीपान रत्नमिदान मीन ।

दूहा—

अत हिम्मत मुरत अधिक, मंचरण हारा सच्च ।
साल वाहनरे पुत्र बडो कुँवर सदैव ॥४॥

× × × ×

अन्त—

नदेवच्छ घरे पधारिया, प्रीत लगी अणपार ।
सदेवच्छ सावलंगातरुँ अविचल जोड़ी अवार ॥२३॥
मवत आठ मतारुँ की माहासुद पाँचम मान ।
वात सम्पूरण तिहां करी, संधकवित समान ॥२४॥

अथ चार पोहरना दूहा—

पहलो पोहर रँग को, दिवडो भाकम भोल ।
घण कंटालो केवडो, मिउचम्पारो छोड ॥२५॥
बीजो पोहर रँग को मिलिया गुभा गुभा ।
घण मड पीउ पसरे, विहूँ तडो वड भूभा ॥२६॥
तीजो पोहर रँग को, मिलियो घणोजु सनेह ।
घण आपाडी बिजली पिउ आपाडो मेह ॥२७॥
चौथो पोहर रँग को, मिलिया बहुलै आस ।
धण संभाले कंचुप्रो, पिउ संभाले पाग ॥२८॥

इति सदे वच्छ सावलंगा वात, दूहे कवित्त सम्पूरण । लिखितं पाटहणपुरे ।

सदयवत्स सावलंगा सम्बन्धी सबसे बड़ी रचना पाटण के जैन-भण्डार में प्राप्त है। जैन कवि रंग-विजय ने सदयवत्स सावलंगा रास के नाम से इसकी रचना की है। इसकी १०८ पार्श्वों की प्रति संवत् १८५६ की लिखी हुई है।

इस कथा की कई सचित्र प्रतियाँ भी प्राप्त हैं। अन्य प्रदेशों में भी इस कथा का काफी प्रचार रहा है। अतः एक शोध-प्रबन्ध लिखने की तैयारी जयपुर के

श्री शंभुसिंह मनोहर कर रहे हैं।

सौराष्ट्र के पालीताणा सहर के सदयवत्स और सावलंगा के नाम की एक बावड़ी होने का उल्लेख कर्नल जेम्स टॉड ने अपने 'पश्चिम भारत की यात्रा' नामक ग्रन्थ में किया है। यह ग्रन्थ उन्होंने अब से १३० वर्ष पूर्व लन्दन में लिखा था। उसका हिन्दी अनुवाद श्री गोपालनारायण वोहरा ने बड़े परिश्रम से

किया है और वह अभी-प्रभी रामायण प्राप्त विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में प्रकाशित हुआ है। इसके पृ० ३०६ में ३१२ में पालीताना के स्मारक मार्गलिंगा की कथा का आवश्यक अंग छपा है। उस पाठकी भी जानकारी के लिए आगे दिया जा रहा है। इसमें कहानी का पीछे का अंग नहीं दिया गया।

पालीताने की बावडी सदयवत्स सावर्णिगा की प्रेम-कथा

पालीताना नहर के पन्द्र की ओर एक प्राचीन स्मारक है। यह एक मार्गलिंगा बावडी का जलाशय है जो परम्परागत कथाओं के अनुसार सुप्रसिद्ध सदयवत्स और सावर्णिगा के प्रेमी-युग्म के नाम से विख्यात है, जिनकी प्रेम-गाथा हिन्दुओं की अनेक प्रणयकथाओं में से एक है। इनकी मस्तुष्टि में यदि कोई शिलालेख मिल जाता तो हम इस बावडी के निर्माण को कम से कम १८ शताब्दी पूर्व का अवश्य मान लेते। सदयवत्स तक्षक शालिवाहन का पुत्र था जिसने हिन्दुस्तान के सर्वोच्च सम्राट् (विक्रम) को पराजित किया था और जिनका सन्त भी ईसावीय सन् ५६ वर्ष पूर्व का है, जो अब भी उत्तरी भारत में सुप्रचलित है। किसी समय यह सम्राट् नगूरु भारत वर्ष में प्रचलित था, बाद में टाक अथवा तक्षक सामन्त ने विक्रम पर आक्रमण करके नर्मदा के दक्षिण भाग में से उसके सामन्त को उखाड़ फेंका, अथवा नम्यत्तक नाम से प्रचलित किया जो उनके नीधित सदवा गेटिक उद्गम का एक और अन्यतम प्रमाण है। यदि हम पुरानी गाथाओं पर विचार करें तो यह मानना होगा कि इन दोनों सामन्तों के युद्ध का परिणाम एक समझौते के रूप में हुआ। जिसके अनुसार शालिवाहन भारत के प्रायद्वीपीय भाग का स्वामी हो गया और महती विभाजन-रेखा बनी हुई नर्मदा का समस्त उत्तरी भाग विक्रम के अधिकार में रहा। आज भी पूर्व भाग अर्थात् दक्षिणी भारत में टाक का प्रयोग

होता है और वही नाम ही सदयवत्स की कथा (विष्णु) सम्राट् प्रमाण है। सम्राट् टाक का ही प्राचीन नाम था या नहीं ?

कानों की शक्ति शालिवाहन का समस्त शक्ति पर और गुणों के कारण नर्मदा प्रणय की बात बनी हुई थी। वह चैतन्य का सागर बनती थी। और हमने विद्या परम की उस पर बहुत गर्व एवं श्रद्धा था। परम का समय का बहुत अन्तर्गत अन्तर्गत था। यह गोशरी के अंत पर शालिवाहन की शक्ति से पैठान नामक नगर में रहता है। भारत के अन्तर्गत, सम्राट् की के नर्मदा दक्षिणी भाग में विद्या का नर (Parkur) नामक नगर के विद्या की एक समान धर्म की ओर धर्म सम्राट् ने शालिवाहन के सावर्णिगा के उमरी मंग की थी। और उनी के साथ उनी की नर्मदा हुई थी। उमरी भागी यदि धर्म की मंग की नेने के लिए पैठान आता था। परन्तु, उनी का विद्या का नर्मदा अपने उम में नहीं था। उनी शक्ति वाहन के पुत्र की उम विद्या था। पर उनी प्रेमिनी थी, और वह उनी प्रेमी, उनी नर्मदा के विद्या की अर्पणा का नर्मदा अन्तर्गत समझौते की ओर शालिवाहन के नर्मदावाहन की अर्पणा अन्तर्गत अन्तर्गत भागी थी। अभी उनी प्रेम धर्म था। उम नर्मदा शालिवाहन के मंदिर में एक ही साधारण के साथ विद्यावाहन का जाने दोनों विद्या के नर्मदा में प्रेम का धर्म अन्तर्गत की वन नर्मदा था। और विद्या का प्रमाण-शक्ति विद्या था। उनी जाने उनी नर्मदा की मान नर्मदा हुआ था कि उनी नर्मदा में शालिवाहन नर्मदा शालिवाहन का हुआ था। जिसने एक ऐसा पाठ बना दिया था कि विद्या पर उनी नर्मदा का परम अन्तर्गत अन्तर्गत सम्राट् मान के उम पर भी नर्मदा उनी शक्ति था। उनी में यह पाठ नर्मदा मानने का ही नर्मदा। नर्मदावाहन के अन्तर्गत का विद्या शालिवाहन नाम की नर्मदा के मानने की उनी विद्या नर्मदा, उनी उनी नर्मदा के शालिवाहन

सदयों की माझी की निवेष्टा हमारे के लिए ही
निराला रहेगी ।

यह निश्चय हुआ कि विवाह के दूसरे दिन प्रातः
साथ ही पारस्परिक मन्त्राजन अपनी नववधू को
नेत्र विदा होगा और मन्त्रालय के मार्ग में पड़ने वाले
मन्त्री और देशस्थ धार्मिक मन्त्रियों के दर्शन करता
हुआ जायगा । सार्वलिंग ने किसी प्रकार इस कार्यक्रम
की सूचना अपने प्रेमी को पहुँचा दी और अतिम
मिशन के लिए देवी का स्थान निश्चित किया जहाँ
उन्होंने प्रेम-प्रतिज्ञा की थी । सद्यवत्स देवी के मन्दिर
में जा चुका और प्रेमपगो प्रेमिका भी वहाँ जा पहुँची ।
परन्तु देवी को एक स्त्री की यह कर्तव्यच्युति सहन न
हुई क्योंकि वह अन्य पुरुष की परिणीता हो चुकी थी,
अतः उसने राजकुमार को गहरी निद्रा में मग्न करके
उस योजना को विफल कर दिया—ऐसी निद्रा में
सार्वलिंग की सभी प्रणय-वेष्टाएँ उसे जगाने में असफल

रहीं । समय के पर लग गए थे । अन्त में उसे
एक ही तरकीब तुरन्त सूझ पड़ी (पान के
रस (पीक) से उसने प्रेमी की हथेली पर कुछ लिखा
और विदा हो गई । स्पष्ट है कि जब राजकुमार की
मोह-निद्रा भग हुई तो वह बहुत निराश हुआ । उसने
भिक्षुक का भेष बनाया, हाथ में दण्ड लिया, कंधे पर
मृगदाला डाली और प्रेमिका की खोज में पैठान का
राजमहल छोड़ दिया । पालीताना पहुँच कर वह शहर
की पुरानी बावड़ी में मुँह-हाथ धोने लगा, जब वह स्नान
करने लगा तो उसे एक पुर्जा दिखायी दिया जिम पर
लिखा था “कालिका के मन्दिर में ली हुई शपथ याद
रखना ।” इन अक्षरों का अर्थ समझाने के लिए किसी
व्याख्याकार की आवश्यकता न थी, इन्हें प्रेम की
आँखें ही पढ़ सकती थी, और कोई नहीं । शालिवाहन
के युवराज का हृदय खुशी से भर गया; उसने तुरन्त
ही प्रसन्नता से डण्डा उठाया और उत्साह के साथ
मन्त्रालय की ओर पुनः प्रस्थान किया ।

पाठकों को कहानी के इतने ही अंश से सतोष
करना पड़ेगा (क्योंकि अवशिष्ट भाग मेरी टिप्पणी
और प्रति दोनों ही से गायब हो गया है ।) अथवा
जीवित इतिहासकारों से परिणाम ज्ञात करने के लिए
पालीताना की बावड़ी का आश्रय लेना पड़ेगा । क्योंकि
यद्यपि सार्वलिंग का पुर्जा तो अब इसकी शोभा नहीं
बढ़ाता है । परन्तु जब तक यह बावड़ी कायम रहेगी
तब तक यह कथा मुँहो मुँह कही जाती रहेगी ।
भारत में ऐसे बहुत से कथानक प्रचलित हैं, जिनके
मूल में कोई न कोई ऐतिहासिक वृत्तान्त रहता है,
जिममें साधारण कृपक से लेकर राजा तक समान रूप
से परिचित होते हैं ।

टॉड साहब द्वारा उल्लिखित पालीताना की बावड़ी
कितनी पुरानी है और अब किम रूप में है । इसकी

मुझे जानकारी नहीं है । इस नगर से सद्यवत्स
सार्वलिंग का सम्बन्ध क्यों व किस तरह हुआ यह
भी विचारणीय है । और भी इनके स्मारक कहीं है
या नहीं अन्वेषणीय है । एक गुजराती पत्रिका में
सन्देश रासक से भी कोई पुराना उल्लेख सद्य-
वत्स सार्वलिंग सम्बन्धी मिलना चाहिए क्योंकि एक
मुसलमान कवि ने उसके समय की बहुत प्रसिद्ध कथा
के रूप में इसका उल्लेख किया है भीम कवि ने १५
वीं शताब्दी में सद्यवत्स प्रबन्ध की रचना की ।
इससे पहले की कोई छोटी-बड़ी रचना कहीं मिल सके
तो खोजी जानी चाहिए । आशा है शोध-प्रबन्ध लिखे
जाने के प्रसंग से इस सम्बन्ध में कोई नई महत्वपूर्ण
जानकारी प्रकाश में आयेगी ।

* श्री अमरचन्द नाहटा

रायसिंह सांदू कृत "मोतियें रा सोरठा"

दोहा अपभ्रंशकालीन महत्वपूर्ण छन्द है, जो छोटा होने पर भी सक्षेप में सम्पूर्ण भावों का सुन्दर वाहक बना। अपभ्रंश काल से लेकर अब तक लाखों दोहे राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं में नैरुद्ध कवियों द्वारा लिखे गये। उनमें राजस्थानी और हिन्दी में तो दोहा छन्द बहुत ही लोक-प्रिय हुआ। कई बड़े-बड़े काव्य दोहों में ही लिखे गये। कई काव्यों में चौपट आदि अन्य छन्दों के साथ भी इसका प्रयोग कवियों ने किया। जैन कवियों ने हजारों राम, भरिष्ण-काव्य बनाये। उनका प्रारम्भ दोहों में ही होता है और प्रत्येक द्वाय के प्रारम्भ या अन्त में कुछ दोहे अवश्य रचे गये हैं। 'दोहा मार' रा दूहा सात सौ से अधिक दोहा वाला काव्य है। कवि गणपति रचित 'भायगनल कामकदला प्रबन्ध' पचीसवा दोहों की रचना है। अनेक राजस्थानी नातों में गीत के साथ-साथ दोहे भी पाये जाते हैं। मुक्तक काव्य या सुभाषित के रूप में तो हजारों दोहे मिलते हैं। राजस्थानी भाषा के ही दोहों का संग्रह किया जाय तो उनकी सख्या हजारों पर ही नहीं लागेगी।

राजस्थानी दोहों की विशेषताय

उल्लेखनीय है। प्रथम तो दोहों में दोहों प्रकारों का मिलना है। एक समय में जैन राजवंश ने 'दूहा चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ छन्द सन्ध लिखा है, जिसे मैंने संस्कृत में प्रकाशित कर दिया है। दूसरी विशेषता चारण कवियों के दोहों में प्रायः दशम-महा अक्षरों का निर्वाह दिखता है। मोतियें दोहों में राजस्थानी आदि में प्रकाशित मिले हैं। यत्नेर हिन्दी में दोहों में प्रायः नौ मिलेगा।

राजस्थानी दोहों की एक और विशेषता भी उल्लेखनीय है। संस्कृत दोहों में तो मिलते हैं जो कवि ने किसी को समर्पित करके कहे हैं और समर्पित व्यक्तियों का नाम दोहों के अन्त में दे दिया है। इसी प्रकार राजस्थानी कवियों, आदि के दोहों-मोतियें में। पञ्चम स्तर में गेहों की २० मोतियें प्रकाशित किये जा रहे हैं। जिन्हें समर्पित करने में मोतियें को समर्पित किया है। ऐसे दोहों के द्वारा कवि का नाम गीत में गया और जिस व्यक्ति को समर्पित करने के लिए लिखे गये वह स्मरण हो गया। "मोतियें रा सोरठा" नामक ग्रन्थ में दोहों की सख्या भी मोतियें नामक ग्रन्थ में मुझे प्राप्त हुई इसलिए मैं उनका संग्रहीत है।

श्री राघनिहू नाहू का जीवन परिचय

राजस्थान ग्रन्थ गोमाण्डो, कच्छना के संग्रह में राजस्थान के ६६ कवियों की मक्षिण जीवनियां संगृहीत हैं। उनमें से राघनिहू नाहू का जीवन परिचय, इस प्रकार है — “ये गांव मृगेसर, वाली परगना, के रहने वाले थे और बड़े हरिभक्त थे। ये महाराजा नरनमिह (जोधपुर) के समकालीन थे, जो गद्दी पर स० १६०० में बैठे और स० १६३० में मरे, तथा उनके कृपापात्र भी थे। एक समय में अपने गांव में आधे दोम की री पर लक्ष्मीनागायण के मंदिर में दर्शन करने गये, जहां कि निगमित रूप में दर्शनार्थ जाया करते थे। वहां उस समय नाग साधुओं की जमात टिकी थी। मन्दिर में इनको हुक्का पीते देख साधुओं ने आक्षेप किया, तब उन्होंने कहा कि मैं तो ठाकुरजी की आज्ञा से पीता हूँ और मेरे ठाकुरजी भी पीते हैं। नागों ने कहा कि अच्छा ठाकुरजी को अभी हुक्का पिलाओ, तो निगन दोहा कह कर इन्होंने हुक्के की नली ठाकुरजी के मुह में लगादी, जिसमें से कि तत्काल पीने की आवाज आई —

आयो ईसर रेह करण जियाएण कारगे ।
बो मत बीसाने, विरह तिहारे वारजी ॥

एक बार में सोलकियों के टिकाने-रूपनगर-गये थे। वहां पर मोतिया नामक एक व्यक्ति ने इनकी बड़ी सेवा की तो उनके प्रसन्न होकर इन्होंने मोतिया के नाम से बहुत शेर बनाए, जिनमें से एक पर यह है —

घालण अरी घरोह, घालण दाहण पाधरा ।
जनम जोधारोह, मान जिना नृप मोतिया ॥

इसका देहान्त स० १६०६ में हुआ। अन्तिम समय में ये त्यागी हो गये थे और विरक्त होकर बैठे रहते थे।

राघनिहू नाहू के पिता का नाम राजा था। मोतिया मिरासि जिनका नाम था। इनके पुत्र को जोधनमिह था।

‘शेरा’ नामा रानी गाय, जोरा कर्तारि ॥
मेरा मुनी मर, मेरा वरुन मोतिया ॥

इन्होंने नरनमिह नागा को राजा कीर्ति दी थी।

अब आगे उनके शेरों का संग्रह —

मोतियें रा मोरठा

(१)

जगत नीधी तोद, मदनगर नरनमिह ।
किणी छिताने कोय, मोरठा नमिह मोतिया ॥

(२)

कई कई मोती नीय, नरनीला परवर दिने ।
अरुने नाग अवीन, मोरठा पतिव मोतिया ॥

(३)

जिण पर लता जेच, मोता नी नीनी मरु ।
वटकप रै मुन देग, मिनिवो रनी न मोतिया ॥

(४)

नर देटा नर भ्रात, नम तपी नरा रनी ।
मुनियो नगी न मोत, मरना नरन मोतिया ॥

(५)

नारं पुन नहिवां, नर गह दाधे नरनमिह ।
नवण ना नरियां मोता दन नी मोतिया ॥

(६)

बोन-दे जेसर, मोती पद गायी नती ।
नीधी वन नरन मोता दन नी मोतिया ॥

(७)

बीमरदे दाहोह, मन मोर जीनी मोतिया ।
मेरी नर भागीत मोता न नरनी मोतिया ॥

(८)

नागी नगी निरनन, नागी नगी न नर ।
मेरी नीय नर मोता न नी मोतिया ॥

(६)

बोदा नाडां वार, पीछा बिन सूटें परो ।
सो जळ पीयें ससार, मैहण घटें न मोतिया ॥

(१०)

लाखां आवें लोय, मपना ज्यूं जावें सरव ।
हुवें भगत ज्या होय, मुगत पगपत मोतिया ॥

(११)

मूमा रै घर सोय, हेम तणी भावर हुवें ।
काज न आवें कोय, मिनखा बीजा मोतिया ॥

(१२)

कृपण करै धन कोय, कोटी कोटी कापुरुम ।
जावें बाधी जोय, मासी मद ज्यू मोतिया ॥

(१३)

अजे घणी उज्जेण, भणजै वाता भोज री ।
जुग में दाता जेण, मरै न कीरत मोतिया ॥

(१४)

मया रहै न मन्न, कर भेली वाटी करी ।
कहियो भोज करन्न, महि पुढं सारै मोतिया ॥

(१५)

वाटी बीकाणै, "रासै" माया राठवड ।
जुग सारी जाणै, महि अन दाटी मोतिया ॥

(१६)

रिध वाटी राणैह, भीमाजळ हाथा भल्ली ।
जस लीधो जाणैह, मेर जिसै मन मोतिया ॥

(१७)

घालण अरी घरौह, पाळण दाळद पाषवा ।
जनमै जोधाणौह, मानै जिसा नृप मोतिया ॥

(१८)

सातूँ मिसला सेर, त्याग घटावण ताकवा ।
नाकी राधां नेर, 'मधकर' राखी मोतिया ॥

(१९)

रण भाजै कर रेव, जीवण कज वेता जर्क ।
दीधी सिर जगदेव, महि जस राखण मोतिया ॥

(२०)

बाधै मूँह वजार, हाटा मै देवाहलै ।
बाजै जद तरवार, मैणे तणा धै मोतिया ॥

(२१)

जीमण पान जटेंह-मिठ भंड लायें मोतिया ।
तणियो माग तटेंह, मानै पेर न मोतिया ॥

(२२)

मूदावें मग मूठ, चानै भाग्न नामै ।
मुबोज गाधी मूठ, मान भग्नही मोतिया ॥

(२३)

रहिया हेकण म्प, भव पैरा में भाग्नरा ।
भट्टाभट्टा जा भूप, महिपत नहिरा मोतिया ॥

(२४)

घरियो तपहिक धार,
अंग न फिरियो एक चित ।

बाधा ज्यां दरदार,
मदवा कुंजर मोतिया ॥

(२५)

कानूँ काज करैह, निधुर बाया मानळा ।
भगवत पेट भरैह, पण नित नहियें मोतिया ॥

(२६)

भट जूतै भगवान, नर मू नर हारै नका ।
भगदै सकल जिहान, मूंग न बिगटै मोतिया ॥

(२७)

रात दिवस हिक राम, पटिये जो बाठू पहर ।
तारै कुटुब तमाम, मिटै चौरानी मोतिया ॥

(२८)

करै कमाटै कोय, दीपक जू नाभी दिव ।
जीमण नीरा जोय, मुलमुल पेरण मोतिया ॥

(२९)

साटी अपणी साय, आठ पहर नमरै खनन्त ।
जिण गी कदै न जाय, मैहण उधारै मोतिया ॥

(३०)

कानी सेव करैह, दम कोटा मुग्गी दिव ।
हेकण नाम ह्नेह, मोट न जावें मोतिया ॥

(३१)

दम दम तीरद बीघ, धन धर्म नै को धारणा ।
सेटे लाहो लीघ, मिनका जमारो मोतिया ॥

(३२)

बोले साचा बाळ, काचा नह धारं करे ।
तिण माणस रां तोल, मेर प्रमाणी मोतिया ॥

(३३)

जावे समदा जोय, लावे कण जो लाग रा ।
हेत घना रे होय, मोती गेली मोतिया ॥

(३४)

जोवे वाटा जोय, साठा कोमा माहण ।
देखण रा अंग दोय, मन चित एक मोतिया ॥

(३५)

पिड मे घणोज प्यार, मिलता मन हृन्व मिळे ।
वे हेतू लखवार, मिलजो दिन मे मोतिया ॥

(३६)

प्रीत उतारण पार, जो विरला लाधे जगत ।
हेतू वणे हजार, मतलब अपणे मोतिया ॥

(३७)

जण तण आगळ जोय, पडिया काज न पालटे ।
लागे सैना लोय, मिसरी सरसी मोतिया ॥

(३८)

✓ पिड मे मोटा पाप, पंथ बहता बाधा पडे ।
अळगा रहिया आप, मैला मिनखा मोतिया ॥

(३९)

जनम दियो तिण जाव, पडसी देणो पूछिया ।
हक बहणा हीसाव, माथव केणो मोतिया ॥

(४०)

अ ग मे राखे आट, करिया री परमी करे ।
जटा बधाया जाट, महामिध हुवे न मोतिया ॥

(४१)

पटके नगरा पाण, अटके नां जाना अटक ।
जटा बधारं जाण, मिनटा ठगवा मोतिया ॥

(४२)

जाट तणे गुण जाय, रात पडे जद राखवा ।
ठग कोड साधू धाय, माठा गहिया मोतिया ॥

(४३)

भटके कर कर भेक, घर घर बलख जगावता ।
दुनिया राहग देख, मतली पनिहा मोतिया ॥

(४४)

दूज कर कर पीर, घर घर दूजे नाच मे ।
बळे जगावे पीर, मुठ नचावे मोतिया ॥

(४५)

हरं न वेणी गोन, घर घर वेणी करे ।
हेत दिना गुन होय, मोटा फिर फिर मोतिया ॥

(४६)

पावे नमियर पीर (७) नमभंग नाच नचो ।
मुग दुग दुवे नरीन, मोटा दुग्गा मोतिया ॥

(४७)

नागा फिर निगट, लोटा रो गावळ नचो ।
छाती मिटे न छाट, मावा नामच मोतिया ॥

(४८)

रागे पेय न राग, भागे नह जीता भूरा ।
दरसन वरता दाग, मिटे जलम रा मोतिया ॥

(४९)

हुवे न नमिया हाण, बाया हग्न न डपजे ।
राजा पतमा राण, मन मोटे पन्ना मोतिया ॥

(५०)

वाने हर हर बाण, कनक न रागे कामगो ।
जोगी अहटा जाण, मन न जीता मोतिया ॥

(५१)

जिहा न बोले भूट, सखा भूट न माभटे ।
घरजे गुण पैकूठ, माथव दग्गाट मोतिया ॥

(५२)

रात दिवस हिन राम, पटिण जो भाट पार ।
नारे बुद्ध न तमाम, मिटे चोगमी मोतिया ॥

(५३)

माथे हुता गुन, वन दिन मे मेरी दुवा ।
पकटी विरदावर, नाथव नगदी मोतिया ॥

(५४)

दीपो भावा दोय, दगनामी चरने वग्न ।
जे फळ बगिया जोय, मान भग्न रो मोतिया ॥

(५५)

मगरा डपन दाग, नगना रोड जोड मोट्टे ।
वेना दोटा दाग, मन दोटा डू मोतिया ॥

(५६)

दिन में बेछा दोय, न्हावै धोवै नीर मे ।
हिये ज कपटी होय, मैल न जावै मोतिया ॥

(५७)

निस दिन पैसे नीर, भगत दिग्वावण भीरिया ।
सहत्या मार सरीर, मैला भीतर मोतिया ॥

(५८)

कूडे गाठ कणोह, राखै वजन न राखणी ।
बहड़ा घणा वर्णह, मछे ठाकुर मोतिया ॥

(५९)

ऊडा समद अनेक, मोती नह ग्रावण मिलै ।
हसा वाजो हेक, मानसरोवर मोतिया ॥

(६०)

आर्या घणो उताळ, सरियादे हंला नमा ।
वण ठा हेक मवाज, मिनटी जाया मोतिया ॥

(६१)

सहियो दु ख सदीन, भव अगळे भगवान भज ।
जे नर सुख रा जीव, महला सोवै मोतिया ॥

(६२)

रे सीहा राजेस, द्विज मिल किण दिन पद दिया ।
उर भुज बळा असेस, मन सुंही ठाकर मोतिया ॥

(६३)

होणी व्है सो होय, भली बुरी क्रम भाग री ।
स्रवण मरण ज्यू सोय, माया रै हय मोतिया ॥

(६४)

जाता जुगा न जाय, दाता भगता री विलम ।
मीरा मूरत माय, मिलणी सूरत मोतिया ॥

(६५)

जाणै भगत जराह, सेना काज नुधारियो ।
कीधी आष कराह, माघव सिजमत मोतिया ॥

(६६)

राजा गावै रूढ, बीजी नै सोन्ठ बड्ड ।
धोवो धोवो धूड, मूढ ज्यारै मोतिया ॥

(६७)

परभाता हर पैल, बगडावत गावै बिहल ।
चूंधं काती छैल, मैल जगत रे मोतिया ॥

(६८)

बानन देह [मरीच, वन रे वनन दिन नन ।
नीनू लोच न दीर, माये विनय मोतिया ॥

(६९)

नह भूया दनराय, अगळ पान न आवनै ।
पारि हायल पार, मैलन झर मोतिया ॥

(७०)

बोचा वर चाटीह, सेन रिमाटी गान रे ।
पोकरणा पारीह, मुग्धर पाली मोतिया ॥

(७१)

आणै माग अनेक चाटा मे गट्टे वट्टे ।
दांढी अभा देख, मूठा तारै मोतिया ॥

(७२)

नेकी गया निगाट, एकी जग न जादर ।
भट जे चारण(भाट), महाजन हुयै न मोतिया ॥

(७३)

लाग तणा धन नेर, पोटी नह ग्रावण वरै ।
महाजन मेणा मेर, मिन न जीवै मोतिया ॥

(७४)

सुणता काना सोय, मिन दाता दाता मिनग ।
दीठा नजरा दोय, महाजन मुळजग मोतिया ॥

(७५)

देवै नोयल दाम, सेवै की पाटी गड्डे ।
वाणी मे बिसराम, मोठा दोन्दा मोतिया ॥

(७६)

पय मिसने पनगाण, दोलीजें आठ पान ।
जहर घणा पट जाण, मेटै महज न मोतिया ॥

(७७)

कुटका दचन यह कोठ, मोटा नह छोटा मिनग ।
जोडे हाया जोड़, मानै रीत न मोतिया ॥

(७८)

भरै न जमनै भांग, जे न मिन नू देख जे ।
मिळमोवर रा मोग, भरै न जमनै मोतिया ॥

(७९)

पाया चटै न पाया, गन दिग्म पटियो रै ।
सजगर रै मन आज, मेनै नून मे मोतिया ॥

שנה שנייה של חסד ושל אהבה
שנה שנייה של חסד ושל אהבה
שנה שנייה של חסד ושל אהבה
שנה שנייה של חסד ושל אהבה

שנה שנייה של חסד ושל אהבה
שנה שנייה של חסד ושל אהבה
שנה שנייה של חסד ושל אהבה
שנה שנייה של חסד ושל אהבה

(८०)

करे जको करतार, नर कीर्धा होव न कूं ।
सह खावै समार, मन रा लाहू मोतिया ॥

(८१)

मिसरी ले अप्रमाण, मीचो घोळो पी नहिन ।
विष सो नीम वसाण, मोठो हुवै न मोतिया ॥

(८२)

हर रा नर हर हेत, सुमरण कर सहता कनर ।
सारा ही कुटुम्ब समेत, मालहै सुरपुर मोतिया ॥

(८३)

नहर्चा फल निरधार, हलतो आखाठा हकै ।
वहै मण धान हजार, मासे कातिक मोतिया ॥

(८४)

मेले खग मग माय, धायौ पण पाळो धणी ।
जळ मे पूगौ जाय, मंगळ तारण मोतिया ॥

(१)

हुवै कितो आराम, किता हुवै दुग का करण ।
करणा सारा काम, मोको लाधा मोतिया ॥

(१)

मन मोती नगमन, पको फट नृ तो नृतर ।
फटा एता पेर, मेन्या निने न मोतिया ॥

(२)

बूटा बाजर आय, हिन चित दान न देत ।
पगन दीजे पाव, मन नृदा एन मोतिया ॥

(४)

आधी पीये आर, नगाजळ जिय नट गिटै ।
पदसी कुंभीपार, मोटा नूनी मोतिया ॥

(५)

साय हुवा तेन मूर, वन छोटे दिगमो नुन ।
पकली विरदापूर, माथन पदरी मोतिया ॥

(६)

उदै अस्त हो राज, अरवा गरवा दगव दी ।
कोट न आवै काज, मरगो दीनै मोतिया ॥

[नगरी भीममचन्द्र, जोधपुर के प्रतापिन
मोरठा मगह ने उषन के ६ मोठे दिग्गये ?]

सुभाषितों के रूप में भारतीय साहित्य नीति-श्रुतियों से अनूत है । यहाँ परम्परा जनपदीय भाषाओं में भी अविच्छिन्न रूप से प्रवृत्ति चली आ रही है । पर राजस्थान के अनुभव सम्पन्न रुदि-नीतिपारों ने इसे नये परिधान में मनोरञ्जक रंग से प्रस्तुत कर सधिय लोकप्रिय बना दिया है । यही कारण है कि आज अलपढ़ ग्रामीण भी राजिग, मोतिया, भंरिया, विसनिया आदि के नामों से संबोधित कर रवे मधे दूहो हो प्रमंगलता एवं खाम से कहते-सुनते हैं । राजस्थानी के इस नीति साहित्य का सद्वृत्ति प्रकाशन उद्देश्य है ।

—समाप्त—

[illegible]

रची । फेर बोतलों की म्हागराज मैरी तो तब पंन
की दया लागी थी । तो दया हमी छै चोरी-धन्यासी
मिर लगावै, तन को लत्तो धोये करै, गिरा-गंठी
पेत रखावै, अगलुगी, अगलुदी, अंद वंय मिर
लगावै । दया हमी हो मै । पीछे राजा बोयो कै
म्हाराज तमनै इतनी वेगे मै तो उगल तो थी
वताओ । उतरै कतरा । कै टाटो राजा छै तो
सोना-चांदी को दान दे । उ मै बोधा गतनजो, मूग,

मो-गदा का रंगी मल धर मल धर मै कै र -
मं छे हमी बोदो मलधर के दिन लागी -
की दया दला दे । हमी बोधा दया -
के मलधर मै । हमी बोधा दया -
मल । मलधर मलधर उके माते -
मन मलधर । हमी टाटी उकी मलधर -
बदला, गुला, पीला भाग बी ।

सम्मतियाँ

सुप्रसिद्ध भाषाविद् डा० हरिवल्लभ भाषाणी निम्नलिखित हैं—“मर-भारती के सभी
अंक देखे । प्रत्येक अंक में मैने अवश्य कुछ न कुछ सामग्री पाई जो मेरे अध्ययन में उपयोग
बने । ‘मर-भारती’ प्राचीन राजस्थानी साहित्य, भाषा और संस्कृति विषयक दृष्ट-मो
मूल्यवान सामग्री एवं अध्ययन प्रस्तुत करती है । उत्तर भारत की अन्य भाषाओं और उनके
प्राचीन साहित्यों—विशेष करके गुजराती और पश्चिमी हिन्दी—के अनुसंधान और अध्ययन के
लिए भी यह अत्यन्त उपकारक है ।”

पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० इन्द्रनाथ मदान सूचित
करते हैं—

“It is very encouraging to find that you are devoting
the pages of this journal in bringing out new facts pertaining
to Hindi & Rajasthani literature of this region which have
been neglected by historians of Hindi literature. I have a
similar complaint against the writers of Hindi Literature for
not mentioning the writers of our region who have written a
good deal in the past in Hindi but it is found in Gurmukhi
script. I am also seriously thinking of bringing out a research
journal entitled ‘Punjab Bharati’ which will be devoted to
research work on similar lines. I congratulate you on your
enterprise which is worthy of serious attention by all scholars
of Hindi.”

राजस्थानी की विभिन्न बोलियों में लिखित कतिपय बातें

—श्री अंगरचन्द नाहटा

राजस्थान एक विशाल और गौरवपूर्ण प्रदेश है जो पहले कई राज्यों में बँटा हुआ था और समय-समय पर सीमाएँ बदलती रही हैं। निकटवर्ती अन्य प्रांतों की बोलियों का प्रभाव भी राजस्थान निवासियों पर पड़ा है। व्यापार एवं विवाहादि-संबंध से यहाँ के लोग बाहर गये व बाहर से लोग यहाँ आये। इसलिए दूरवर्ती प्रांतों की बोलियों का भी प्रभाव राजस्थान की बोली पर पड़ा है। राजस्थान के अलग-अलग राज्यों में ही नहीं पर एक-एक नगर के ग्राम-नगरों एक-एक नगर के विभिन्न जातियों वाले लोगों में भी बोली की कुछ भिन्नता है। इन बोलियों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन अभी विशेष नहीं हो पाया है। २-३ स्थानों की बोलियों का कुछ अध्ययन हुआ है और १-२ स्थानों की बोलियों सम्बन्धी शोध-कार्य चालू है। जिन बोलियों का अध्ययन शोध प्रबन्ध के माध्यम से हुआ है उनका भी परिणाम प्रकाश में आना चाहिए। और जिन बोलियों का नहीं हुआ है उनका योजनाबद्ध शोधपूर्ण अध्ययन शीघ्र ही किया जाना आवश्यक है।

ग्रियर्सन ने भारत की भाषाओं और बोलियों का जो अध्ययन बहुत वर्ष पहले प्रकाशित किया था उसमें मे राजस्थानी सम्बन्धी विवरण अनुवादित होकर प्रकाश में आ चुका है। इसके बाद जयपुरी के सम्बन्ध में एक पाश्चात्य विद्वान् ने महत्वपूर्ण स्वतन्त्र ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उसके सम्बन्ध में भी डा० सहलजी ने कुछ प्रकाश डाला है। 'मह-भारती' में

समय-समय पर राजस्थान की विभिन्न बोलियों के संबंध में श्री सीताराम लालस और मेरे लेख छप चुके हैं।

कलकत्ते की राजस्थान रिसर्च सोसाइटी ने अब से २५ वर्ष पहले इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया था। राजस्थान के ५ राज्यों में श्री भगवती बीसेन और रघुनाथप्रसाद सिंघानिया ने जो महत्वपूर्ण साहित्य संग्रह किया था उसमें से बहुत कुछ आज भी जोलार्न-स्मृति मन्दिर में सोसाइटी के नाम से सुरक्षित है। स्व० सिंघानिया ने सोसाइटी से सम्बत् १९९० में मारवाड़ी भजन-सागर नामक एक वृहद् और महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किया था। उसकी भूमिका में राजस्थानी भाषा, उसकी शाखाएँ उन बोलियों के बोलने वालों की सख्या और बोलियों के कुछ उदाहरण डा० ग्रियर्सन के ग्रन्थ से उद्धृत किये गए थे। दूँडाडी के ओकेट में (जोधपुर) दिया गया है। वह सम्भवतः जोधपुर राज्य में दूँडाड का कुछ हिस्सा सम्मिलित था इसी लिए दिया गया हो। अन्य बोलियों में गोरावाटी (अजमेर), मेवाड़ी (उदयपुर) मेवाड़ी (अजमेर) यहाँ सम्भवतः मेरवाड़ी नाम होना चाहिए। सिरौही, मारवाड़ी (संथ की बोली) (सिरौही), थली (जैपलमेर), शेखावाटी (जयपुर), बागडी (बीकानेर), तोरावाटी (जयपुर), काठेड़ा (जयपुर) किशनगढ़ी (अजमेर), हाडोती (कोटा), सौंदवारी (भालावाड़), बोलियों के गद्य-पद्य के उदाहरण मारवाड़ी भजन-सागर की भूमिका में दिये गये थे।

राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, बनकला के मगध में जो बहुत-सी मूल्यवान् सामग्री है, उनमें से कुछ भी ऐसी भी है कि जो उस समय गंभीरता से नहीं थी, पर आज राजस्थान में प्राप्त नहीं है। मैंने बतलाना जाने पर सोसाइटी के मगध में प्रावश्यक सामग्री की कुछ नकलें करवाई थी। उनमें से कुछ पृष्ठों में राजस्थान की बोलियों में कही जाने वाली बातें भी हैं। इन बोलियों के शीर्षक जो वहाँ के रजिस्टर में दिये हुए हैं—उनके नाम ये हैं—काठंडा की बोली, जयपुर की बोली, बाग की बोली, कालीमाल की बोली, टागभांग की बोली, झगर बाड़ा की बोली, नागर पान की बोली, मरवा की बोली, चौरासी की बोली, बीघोता की बोली, राजावाटी की बोली, मारवाही, मारवाही-दूँदाही, मारवाही पूर्वी, मेवाटी, देवावाटी, तोरावाटी की बोली। इनमें से कुछ नाम सम्भव है प्रयुक्त हों। इन बोलियों की ये कहानियाँ किन-किन से सुनकर या किस तरह सागृहीत की गई, किम ग्राम या नगर में

किस व्यक्ति द्वारा ये इन बातों की मूल्यवान् सामग्री—उसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता। कुछ सामग्री के नाम भी मने में लगते हैं। इसलिए ये नाम किन-किन स्थानों के मूल्यवान् हैं इस पर भी जानकारी इतनी कम है।

गौड़-गौड़ और जगि-जगि में जो बोली की लिखा है उससे सम्भव है बहुत जानकारी के लोग मूल्यवान् सामग्री बनाना प्रावश्यक है। उनमें से जो बोली में प्रयुक्त होते पर भी राजस्थान की एक सम्भावना में साहित्यिक भाषा भी रही है। लोक-गीतों और विभिन्न स्थानों पर स्थितियों की रचनाओं में भाषा में बहुत प्रयुक्त है और वहाँ पर लिखा गया है, इस पर भी विश्वास किया जाना चाहिए। राजस्थान के विभिन्न विद्यालयों की गणनाओं की लिखनी भी प्रयुक्त होती है। उन सबका भाषावैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिए।

काठंडा की बोली—

राजा करण की बात

राजा करण छोटी जड़ दांतण पाइतो जड़ मश मण सोनू रोज दान करतो। दान करर नित बिरामणा में खाटतो। यो परबद रोज मुररा हो कर राखतो। सब राजावा में या बात मसूर हो रनी। उज्जैन नगरी को राजा और विकरपाशीत परदुम की काटनगर नीत को चालणहार यो मनमें देखो कि इनकी बात परतापीर तो म्हारी बलाही तं मोन मारं मसूर हो रही छं पण जो राजा करण की बात बलामण सोनू

जो दान करतो की भी दांतण, जो इन्हीं लक्षणों के साथ है राजा के रोज दान करने में रहते। राजा की बात करण की भी सोनू मुररा बलामण मसूर हो रनी पण इन्हीं सभी बातों की। जड़ राजा का विकरपाशीत बिरामणा में चालणहार नीत को चालणहार यो मनमें देखो कि इनकी बात परतापीर तो म्हारी बलाही तं मोन मारं मसूर हो रही छं पण जो राजा करण की बात बलामण सोनू

नहीं अर घोड़ा की चाकरी में चरो हुयो। तद कै ही दिन ताई राजा निसचो करयो, सोनू आवाको पतो पायो नही। राजा करण नै नित निति करण का रहवा का म्हेल में सूं काडर देतो देख्यो। राजधानी की पैदाइस में सूं मंगाकर देतो देख्यो नही। जद राजा वीर विक्रमादीत देखी क ओ मोनू कोई करामांत सूं आवैं छै अर जद राजा दान करै छै। राजा करण नित निति दन्योथ्या की भक्त घोड़े सवार होर सहेल करवाने जाय। अर एक चाकर ने साथ ले जावै। सो नितनिति तवेला को घोडो अर चाकर ने अपणा अपणा वार अवं जूं साथ जावै। एक दिन राजा वीर विक्रमादीत जै घोड़ा की नोकरी करै छो बैको वार आ गयो। वै दिन घोडो लेकर राजा वीर विक्रमादीत राजा करण नै सवार होवा वासतै लैर गयो। तद राजा करण सवार हुयो अर सवार हैर चाल्यो। तद भीत दूर ताई कांकड मे चाल्या गयो। उजाड में दो घड़ी रात गयो जाती एक रोखा की बनी आई। उठै घोड़ा नै ढावकर राजा करण उतरयो अर चाकर जो राजा वीर विक्रमादीत छो जै नै घोडो पकडा दीयो अर कही कै तू अर्ध घोड़ाने लीयां बैथ्यो रहै। मै आऊ जते कठीनै जाजे मतनै। या कहर राजा करण बनी में गयो। वै भक्त राजा वीर विक्रमादीन घोड़ा नै एक रौखकै वाधी अर भक्त अंदेरी रात की छी सो जठिने राजा करण गयो वै कै पाछै पाछै ईयो गयो आगाने एक गुफा देखी जै मैं बारण भट्टी पर कड़ावो चढ़ रह्यो अर ऊमै तेल तातो हो रह्यो। सो जाता ई राजा करण कड़ावा में कूदकर पड गयो। पडताई जीव निकल गयो अर भुंद गयो। या बात राजा वीर विक्रमादीत लुक्को हुयो देख रह्यो। ईता में गुफा में नूँ एक दंत निकस्यो। वो दंत कड़ावा कनै आकर राजा करण नै काडर ऊंको माम खा गयो। फकन ऊंका हाड राख्यो। पाछै पाणी को छाटो देकर राजा नै सरजीवन करयो। राजा मावचेत हुयो। ये भक्त वै दंत कहीक माग। जद राजा करण कहीक

सवा मण सोनू छो। वै भक्त दंत हैकै कनै मिए छी तै सूं सवा मण सोनू पैदा कियो। वो राजा नै दे दियो। राजा लेर चाल्यो। सो राजा वीर विक्रमादीत घोड़ा को चाकर होर गयो छो सो लुक्को हुयो देखै छो। वा उठासूँ आगाने चाकर घोड़ा कनै अयो। रोव का सूं घोड़ा की बागडोर खोनर वेंके कनै लैर बैठ गयो। अत्ता में राजा करण आ गयो। आता ही सवार होकर चाल्या। सोनू राजा कै कनै मोजूद रह्यो। राजा करण अने म्हेल में आकर सोनू तो मेल दियो। राजा वीर विक्रमादीत घोड़ा लैर तवेला में गयो। सारी करामात राजा करणरी देख लीनी कै अयां तो सोनू ल्यावै छै अर यो सोनू ल्यावै सो दान करै छै। दूसरै दिन राजा वीर विक्रमादीत मास खार डील रे अतर फुनेल लगार वैही दंत कै ठिकारण दन्योथ्या जाय पुच्यो। राजा करण कै पैली प्रचर जाताई कड़ावा में पड गयो अर तेल में भुंद गयो। इत्ता में दंत बाराने आकार राजा वीर विक्रमादीत नै काडर खा गयो। पछै दे छाटार सरजीवन करयो अर कही माग। जद राजा जुवानसूँ कही क मैं जो करार कलूँ सो आप छो तद मांगू। जद दंत कही के आज थारा मांस सू म्हारी मसा पूरण हुई छै सो तनै यो वचन दीयो छै सो तू मागसी जो जो होस्युं। जद राजा वीर विक्रमादीत मागी कै आप कनै यां मण छै सो मनै छो। सो दंत जवान में आकर मण देदीइ मण लेर राजा चाल्यो नोकरी छी जै पर जार पूच्यो। राजा करण की वक्त दंत से पौंचवाकी छी जै वक्त करण पोछ्यो। आगाने जार देखै तो कड़ावो ऊंदो पड्यो छै। कड़ावा कनै जाकर ऊवो रैयो तै भगत दंत बोल्को कै म्हारे कनै करामात छी सो पैली जो आयो सो ले गयो अब तू क्युं ऊवो छै। अब की ऊवो रह्यो तो तनै मार नाखू ला। ऊं भक्त राजा विचारी कै ऐठै जो कोई करामात ही सो कोई ले गयो। पाछो म्हेल में आकर सुस्त हार सो गयो दन ऊग्योर ऊठवारी भक्त

राजा मैनवारें उठर आयो नही। वारानी दान दाना ऊवा। सोनू मौजूद नई। राजा मनमें देवी के राजकी पैदास में सू मगाऊ नो पार पटै नही जद भोतमो हेलो हुयो। मव लोगा नै या ठीक पढ गई क राजा कर्नै सोनू मौजूद नही। या बान राजा के काना पढी अर जीव तुजवो विचारयो। तं भवन राजा वीर विक्रमादीत परदुम को काटवा हावो कुवाचैं छो सो घोडा में चाकर सो विचारी के राजा करण में दुख पढ गयो जद राजा करण नै जार कही के मै राजा वीर विक्रमादीत छूं। राजा धारें में दुख पढ गयो तू या मण, लै। मण सू मोनो पाट कर दान करा दीयो। मणसू योईको दुम कटा दियो। वं भक्त राजा वीर विक्रमादीन मीक लैर रवाना आपणा सैर नै हुवो।

× × × ×

एक हंगर में एक नार नै पीजरा में कंद कर भेल्यो जो दो तीन दनको भूखा मरयो छो वठैं वो नार कनी एक बरामण चाल्यो गयो। नार ऊ बरामण नै कई तू मने ई पीजरा में सू छोट दे तनै घरम होसी। जद वो वामण नारनै दो तीन दन को भूको तसायो देखर पीजरा की लटोरी खोलदी। पीजरा में सू नार नीसरयो अर ऊ वामणनै कई में तनै खास्यू जद वामण बोल्यो में तनै पीजरा में सू काठयो में धारो कई बुरो करयो। जद नार कई अबार को वकत छल्यो छै महनो करवानावो बुगे करणो। जद वामण कई धारा कैवागी मानू दोनै कोई दूसरा कर्नै आ बात बुवादे। जद नार अर वो वामण दोन्यू चाल्या एक गैलापर नीम को रुखडो ऊवो छो तद ऊ रुखड़ा नै पूछी में ई नार को भलो करयो छै अर मो म्हारे स बुरो बरुओ चावैं छै सो मा दाग घनाप की क वे घसाफा बी। जद वो रुखडो कई ई नै तं माबा जाबाला म्हागी छावली बँटैं अर जाता चाली तोर ने पार मो

ऊवार की भवन छर्योई में भनी मगाऊ नो पार पटै नही जद भोतमो हेलो हुयो। मव लोगा नै या ठीक पढ गई क राजा कर्नै सोनू मौजूद नही। या बान राजा के काना पढी अर जीव तुजवो विचारयो। तं भवन राजा वीर विक्रमादीत परदुम को काटवा हावो कुवाचैं छो सो घोडा में चाकर सो विचारी के राजा करण में दुख पढ गयो जद राजा करण नै जार कही के मै राजा वीर विक्रमादीत छूं। राजा धारें में दुख पढ गयो तू या मण, लै। मण सू मोनो पाट कर दान करा दीयो। मणसू योईको दुम कटा दियो। वं भक्त राजा वीर विक्रमादीन मीक लैर रवाना आपणा सैर नै हुवो।

एक हंगर में एक नार नै पीजरा में कंद कर भेल्यो जो दो तीन दनको भूखा मरयो छो वठैं वो नार कनी एक बरामण चाल्यो गयो। नार ऊ बरामण नै कई तू मने ई पीजरा में सू छोट दे तनै घरम होसी। जद वो वामण नारनै दो तीन दन को भूको तसायो देखर पीजरा की लटोरी खोलदी। पीजरा में सू नार नीसरयो अर ऊ वामणनै कई में तनै खास्यू जद वामण बोल्यो में तनै पीजरा में सू काठयो में धारो कई बुरो करयो। जद नार कई अबार को वकत छल्यो छै महनो करवानावो बुगे करणो। जद वामण कई धारा कैवागी मानू दोनै कोई दूसरा कर्नै आ बात बुवादे। जद नार अर वो वामण दोन्यू चाल्या एक गैलापर नीम को रुखडो ऊवो छो तद ऊ रुखड़ा नै पूछी में ई नार को भलो करयो छै अर मो म्हारे स बुरो बरुओ चावैं छै सो मा दाग घनाप की क वे घसाफा बी। जद वो रुखडो कई ई नै तं माबा जाबाला म्हागी छावली बँटैं अर जाता चाली तोर ने पार मो

कै मैं इत्ता आदमी मारूँ छूँ जी को पाप लागै छै जीका वो ये सीरी छोक नई । जद वा ठग री वेटी ऊंरा घररानै जार या वात पूछी जद सगला घरका नट गया कै धन रा तो के सीरी छा पाप स जो करैलो जी नई लागैल्यो । आ वात सुणर ठग की वेटी पाछीई रजपूत कनै आगी । रजपूत नै कई अब पाप का सीरो तो कोई वी घर का नई । सब नट गया । धन रा मीरिस सब छै । जद रजपूत कई कै पाप तूँ एकली करै अर खावा मैं ये सब लोग तूँ इत्ता मिनखा को विण्णास कर थारै मायै क्यूँ पाप बाँदै छै जद वा ठग री वेटी ई वात नै विवारी कै यो कै तो साची छै जद ऊँ रजपूत नै कई कै मैं अडे रयास तो म्हारा घरका म्हाकनै सोई पाप करासी तू मन लै चाल । म्हारा घर मैं धन मोकलो छै सो तो ले चालो अर मव नै सूताई छोडकर चल्या चालो सो वा ठग री

जयपुर की बोली

एक राजा का दो बेटों की कहानी

एक राजा छो अर ऊँ कै दो बेटा छा । भगवान की अमी मरजी हुईस वो राजा बेटा बालक छा जदी मर गयो । मरती भगत आशका छोटा भाई नै बुलार आपका दोन्यूँ बालका की अर आपकी राणी की सरम ऊँनै घाल गयो अर या खै गयो अर ये दोन्यूँ कामकाज मैं नै समजै जिते कामकाज राजा को तू करवो करजे अर ये स्याणा समजणा व्है जाय जिद या को राजपाट याने समला दीजै । सो राजा नै मर्या पाछै । योई कामकाज करै अर सारा राजपाट को फुलोकुल योई मालिक व्हैगो । थोडासा दिना पाछै यो आपका मन मैं विचारी अस ये दोन्यूँ भतीजा बडा व्है जायला तो राजपाट आपणा हात सून खुस जायलो जै व्है तो यानै पैलीई मरा नखावा को उपाय करा । सो तो या वात विचारर घरका नाई नै बुलायो अर ऊँ नै लालच देर या मई अस तू या दोन्यूँ छोरा ने

लडकी घरमै सून धन निकाल सवनै सूता छोडकर ऊँ रजपूत की साथ चली गई । अर आदमी विण्णासै छी ज्यारा पाप सून छूट गई । अर ऊँ रजपूत सून घरबासो करलियो । वो रजपूत ऊँने आपरा देस मैं ले गयो ।

मार नाख । नाई हामल तो भरलीनी । पण मन मैं घणाई पिस्तावै अर ऊँ काका का कैवामूँ फेरका राख करार वा दोन्या की सवार करवानै रणवास मैं गयो । वै दोन्यूँ भाई सवार करावानै आया जिद नाई राख पेटी मैं सून काडर मेल्या अर रोवा लाग गयो । जद राणी खई अरे भाई खवास तूँ क्यूँ रोवै छै । राजाजी मर गया तो पड़्या मर जावो नाराण करी तो थोडासा दिना मैं ये वी राजा व्है जायला । नेवगी बोल्यो महाराज मैं ई वात सून कोनै रोक मैं श्रीरी वात सून रोक छूँ । राणी पूछीस वा काई वात छै जोसू तू रोवै छै । नेवगी खई अक महाराज या कवरा का काकाजी मूनै या दोन्या नै मारवा कै ताई फेर का राख दीना छै । अर या खई छै तू या दोन्या नै मार नाख सो म्हारज मोसू तो मार्या को जायनै म्हारै तो यई राजा छ मो मैं ई वात सून रोक छूँ । राणी खवाम नै तो पाँच म्हीर देर विदा कर दियो अर आप विचारी अस अब एडै रैवा को धरम कोने जै व्है तो या दोन्यानै लेर कठी नै चली चालूँ । या विचार रात रात का समा मैं वा दोन्यूँ बालका ने लैर चाली सो चालता चालता नन्दी माल दिन ऊँयो अर वा दोन्यूँ बालका नै भूख लागी । नदी माल वै तीन्यूँ ई बैठ गया अर हाथ मूँडो धोबा लाग गया । ऊँ नदी मैं दो लाल भैती जाय छी सो वै लाल छोटक्या छोरा ने दीखी वो वा दोन्या ने दोन्यूँ मूट्यां मैं ले लीनी अर मां ने स खई कोने । कनई एक सैर छो जी मै गया जार राणी आपको जै राइ खोलकर जोरया वी दूकान मैं बेचवाने गई । जिद वो सेठ ऊँ छोटक्या छोरा कनी सून वै लाल तो ले लेनी अर ऊँका हात मैं दो लाडू दे

दीना वो छोरो भूको छो सो लाहू लेर खावा लाग
गयो । सेठ वानी होनी तो रैवानी बता दीनी । दो च्यार
वादा वादी वा कने राख दीना भर रागो ने या खईस
तू म्हारी घरम की भैरा छै तू र थाग बेटा ये थाका
बिखा का दिन ऐहई काट छो भर ऐहई रैवो करो ।
सो वं तीन्यू ईहई ई रैवो करघा भर वारा खावा पीवा
ने बी वो सेठ देवो करयो । मो ऐया कइ दिना ताई
रेवे करया । थोडा दिना पाछै वो सेठ वा दो नाल
में सूँ एक लाल तो कोइं हूमरा सेठ ने बेच दिनी घर
एक लाल आपरा देस का राजा की निजर कर दीनी ।
राजा लाल ने लेर आपकी वेठी ने दे दीनी । राजा
की बाई लाल ने लेर आपका माथा की मीडी में लगा
दीनी । ऊ राजा की बाई कने एक सूवो छो मो बाई
ऊ लाल ने सूवा ने माया में बठाई भर सूवा ने
पूछी भर या लाल मूने कमीक लागी । सूवो खई
म्हाराज लाल तो या धणी ई मिरै छै पण ई वा
सिएगार सू तो थे सोया कोन जो अमी २ पचास २
लाल दोन्यू ओडी मीड्या में लगाओ हो भोती गोवो ।
जद या सुगार राजा की बाई जार राजा ने खई अस
दादा जो मने पचास लाल म्होई मीडी में लगावाने
अर अचास ई मीडी में लगवाने असीई ओर मगाओ ।
नतर तो मै मर जाऊ ली । जिद राजा सब साऊकारा
ने बुलार या खई भर भाई म्हाने अमी सो लाल
एकठी करर ल्याइयो । जिद सब सेठ साऊकार नट
गया भर खई म्हाराज म्हा कने तो अमी लाल एक
भी कोनै म्हे सो कोडा सू ल्यावा । जिद राजा
बाई ने खईस बाई अमी लाल तो एक बी ओर कोनै
मिलै तो बाई बोनीस जो थे अमी नो लाल ने मगा-
बोला तो मै साच्या पर जाऊ ली जद राजा ऊँ
पैली हाला सेठ ने बुलार खईस तू अमी नो लाल ओर
ल्याइ नतर में तू ने मरा नाखाऊनी । सेठ बोन्वो म्हाराज
चाये मारो चाये छोरो म्हा रे कने तो अमी लाल एक
बी कोनै । फेर राजा ऊँ पूतीस या लाल तू कोड़ासूँ
ल्यायो छो । वो बोल्वो म्हाराज में तो या लाल ऐया

नीनी छी क एक मुगाटे घर ऊँवा दो तीरा कोनै नम
बेचवाने म्हारी दुखान ऊपर प्राप्ता छी । वा तीरा में
मूँ छोटव्या छोरा कने रने में या मान देसी नट कने ने
खावाने में दो लाहू दे दीना घर या मान ऊँ रने
मू ले लीनी घर वा मा बेटा ने रैवानी में म्हारी ए
होनी बता दीनी मो वं प्रद भी ऊँ में नई रने नम
होय तो वानै हाजिर कर । राजा म्हा ऊँ लोरा में
ल्या । सेठ पार वारी मान म्हा घर ताँ राजा वानी
याद कर छै सो तू पारा बेटानी नजा रने विनाइ ।
जद रागो अणग बहा बेटा ने विना दिया । वरी सेठ
राजा कने गयो जद राजा ऊँ पूतीस म्हा पारा तू
या लाल कोडा सू ल्यायो छो । वो बोल्वो म्हा राजा
तो म्हारा छोटा भाई ने नंसी में पासी री राजा म्हा
भाई खतो अमीने मो लाल छोरा म्हा दे नजर पाने
सबने पाणी में पिलार मरा नमज नी । या का म्हा
छोरो मन मे फिकर करर या म्हा नजा ने घर
म्हाराज म्हे लाना शीरा सू ल्यावा । राजा बोली
भाई मूने तो टीक बोने पार जेडा नट म्हा नी ।
फेर छोरो बोल्वो म्हाराज मूने एन भोज बोली म्हा
छो मे लाल रैवानी जाम्मू पण म्हा नी मा घर
म्हारा भाई ने बोने नर वो दुग मर दीन न ।
या बहर या लोरो पोडा मान म्हा नजर रैव पण म्हा
छापकी मान मारा म्हा पार राजा मा म्हा नी देन
अव तू लाल कोन म्हा म्हा नी । म्हा नी म्हा नी म्हा
कमूँ हई मो हई । तो मै नट राजा मो म्हा म्हा नी म्हा
नाखतो ली मू मै ना हाँमन भरवाता छै म्हा नी
मादी नमरी जाम्मू घर म्हा मान म्हा नी म्हा नी
ल्यासूँ । मो पोडा मान म्हा नी म्हा नी म्हा नी म्हा
नदी मान म्हा नी । ऊँ म्हा नी म्हा नी म्हा नी म्हा नी
मान्यो । मान्यो पाक्यो पा म्हा नी म्हा नी म्हा नी
पोडयो जेई एन म्हा नी म्हा नी म्हा नी । म्हा नी म्हा
म्हा नी दादा ली म्हा नी म्हा नी म्हा नी म्हा नी म्हा नी
भारयो घर म्हा नी म्हा नी म्हा नी म्हा नी म्हा नी
तोने बोल्वो म्हाराज म्हा नी म्हा नी म्हा नी म्हा नी

गँतो सो लाल त्यादे नतर तन मरा नाखूँलो । म्हारा भाई न एक लाल ई नदी में लादी छी सो जीमूँ में तो लाल लेवाने ई नदी २ आयो छूँ । स्यामी नदी दध्या लाल यार हात कैया आसी । जद छोरो स्यामी न खई अस म्हाराज म्हारे तो अब येई छो मो कोई पाव बतावो । जद स्यामी ऊन खई अम भाई एक दाना कन एक लालनदे वाई छै अर वा नित की नित लाल उगल छै पण राकस तू न देग लेलो तो त्वा जायलो । जद वो छोरो बोल्थो म्हाराज ये या बात बताई तो ऊँ दाना न भी मारवा को उपाय बतावो स्यामी बोल्थो अम भाई मैं तुने या भवूत की च्योठी द्यू छूँ अस तू या ऊँ दाना मालूँ नाप दीजे मो बो दानू मर जाय लो । जद तू ऊँ लालनदेवाई न लीयाज अर तू ऊँसूँ व्यावकर लीज । वो लडको वा भवूत की च्योठी नेर चाल्यो अर वा लालनदेवाई छी जेडे पोछ्यो । वो दानूँ तो कीडे गयो छो अर वा लालनदेवाई एकली ई छी । जद वो ऊँ देख खई स तू म्हारी साथ चाल तो तन ले चालू वा लालनदेवाई बोल अस दानू आपान चालूता देखले लो तो मार नाँले लो । जद वो पूछी अम दानूँ कदमीक आसी आया पैली ऊँ न मार पाछै चालूँ तो वा बोली थोड़ीमी वर मैं अब लो । थोड़ी ती वरम दानूँ आयो तो लडको ऊँक मालूँ भवूत की च्योठी पटक दीनी अर दानूँ तो भसम व्हंगयो अर वो लालनदेवाई न घोडा मालूँ बठार लीयायो । सो लाल तो गजार राजान दे दीनी अर आप लालनदेवाई सूँ व्याव कर लीनू वो गजा ऊँ लडका मूँ भोत राजी हुयो अर आपकी व ई भी ऊँ न ई परण दीनी अर ऊँ आपको आदो राज देवा लाग्यो जद वो लडको बोल्थो अम मैं तो थारो राज तो ल्यू कोन म्हारो राज म्हारे काको करै छै सो ये थारी फोज द्यो सो मैं म्हारे राज म्हारे काका मूँ ले ल्यूँ । जद राजा आपकी थारी फोज उन दे दीनी अर व मा वेटा आपको राज लेवान आपका देग मैं आया थारो काको वाकी फोज आती देखर डरप गयो अर वा क पना

आयग्योर मन मैं भोत डरप्यो अस अब ये मूँ मार नाखसी । पण ये दोन्यूँ भाई ऊँ अपणा काकाने मार्यो तो कोन अर ऊँरी सारी तकसीर छी सो माफ कर दीनी अर ऊँ ऊँकी जागीर छी सो दे दीनी अर आपको राज आप लेर नीकी तरै राज करवा लाग गया । राजा राजरपरिजा चन व्है गया ।

डांग की बोली

राजा भोज हो वारी अएतरी कूँ सुपनो आयो तो सुपनेन में तो वाकूँ सोने की मढैया दीखी जामैं ऊँसो चिलतर दीख्यो फलभूँड अर सीस हस पर भोत कबूल सूरत अस्तरी वाके भीतरा तो राजाने बोली क राजा या मु ने कूँ योकूँ साचो दे । तो राजा बोल्थो क राणी ई सुपनो तो मेसे साँचो नही होय तो राणी बोली मेरा तेरा घरवासी नही होगो तो जब राजाने कहिक आच्छयो तेरी मरजी होय या होगो तो राणी बोली कि मैं तो जाती हू पण मेरे पेट मे आसापत है तेरी सो छोरो होगो तो तेरे कन आज्यागो । अर छोरी होगी तो आज्यागी तो राणी व्हाले चल देई । तो चला चले एक सैर मैं पोछी तो व्हा जाय कर वजार मैं एक जगह बंठी तो एक सेठ चाल्यो आयो तो वाकूँ देखकर भोल्थो ऐ भाई तू खाकी है खातें आई है । जब उन राणी बोली कि असवानकी राली हूँ घरती की भेली हूँ । तो ऊँ सेठ बातें बोल्थो आ तू मेरी घरम की भण है तो वाकूँ सग ले गयो सग ले जाय कन हवेनी मे ले जाय कन न्याटी राखदई तो ऊँ बोली क है भाई मेरे पेट मे आसापत है जे मेरे घर रै घणी को हूँ याको भंम मत घरियो । तो ऊँ साहूकार बोल्थो क आच्छयो भाई छोरी होगी तो म्हारी भैराजी होगी छोरो होगो तो भैराजी होगो तो वाकूँ छोरो ही हुयो अर खेततो २ कोई दम वारे वरस की ऊपर मैं हंगो तो एक दिन घोडा पै चढक न वजार मैं जाहो तो घोडा घर भाजायो । मालण वेठी जावो ढकोला मे फूल

घरे जे फैलगे तो उ बोली यारै बाप कूं रोऊ जैको
 जाणै खांकी है घर खाको नही है तो अरोमकर कंन
 वारी मामैं ढिगार आयो तो वाकीवानैं कही कि मेरो
 बाप को नाव बतादे । तो वाकी मैया बोली तेरो
 बाप राजा भोज है तो वाने कही कि मैं तो भाभ ले
 जाऊंगो तो एकाद दो हजार रुपया लेकर भाभ को
 पकड़ भर लई घर समन्दर में चाल्यो तो वहाँ भाभ
 की कड़ी अटकगो तो ऊ भाभ को पकड़ के उतरगो
 नीचे तो वहाँ महादेवजी ने पाँव में अटकाराख्यो ही तो
 ऊ जार पोछ्यो तो महादेवजी ने कही कि आ राजा
 भोज के कुँवर वीर भादर तो वाकू वावन भँरू
 और चौसठ जोगनी देदी और कही कि फलाणे
 राजा पै ते खडो लीजो । नो भाभ कू छोड़कर
 छल दियो व्हा वे तो वताँ पोछ्यो वा राजा कं सैर
 से एक न्हार गीदरो ही वा सैर में तो एक आदमी
 की रोज भेट लगे ही वा न्हार के तो वा दिना
 एक कुम्हार के बेटे को वार हो तो वाकी मा रो
 रही ही तो राजा भोज रो बेटो वासूँ बोल्थो कि
 भाई तू रोवे मत मैं जा बैठूंगो तो वाने पूवा तो
 जेवाय दिये घर दरवाजे मे जा सुवाय दियो वावन
 भँरू घर चौसठ जोगनीन कूं हुकम दियो कं न्हार
 आवैं तो मार डालो । जब न्हार आयो दरवाजे पे
 आत आत मारयो तो दरवाजे ही दिन ऊयो नैर मे
 हला हेगो और कान पोछ तो वाने पैली काट नियो
 है अब जे आवे जेही कं कि ये तो मैंने मार्यो है
 तो राजा को ई हुकम हो जे याको मारले जाकूँ बेटो
 दऊ और राज दऊ तो व्हा सब भाई बेटा इक वोडें
 हुये उब उगने बात ल्योपाई कि जाने मार्यो है
 जा कने तो कान पोछ होगे तो ऊ कुम्हारी बुलाई
 घर पूछी कि तेरे बेटा को वार हो ऊ गयो क नही
 गयो तो ऊ बोली कि मेरे तो पावणो पायो हो
 रात जे सूयो तो ऊ दुलाय लियो जन् बोले कि जाने
 मार्यो है जा कने कान पोछ होगे तो फटती देण-
 वाने निकाल फटक दिये जब बातें बोले कि भाई तू
 माग वाने कही कि महाराज मैं तो तारो चाहूँ ?

आपको तो खांडो ही नीप दियो जब ऊ नैर चलो
 आयो आगा ले राजा के सैर कूं पो वा राजा की
 बेटो राजा भोज के कुँवर के नाव को नोरपो मुग्ग
 नारायण माऊ ठाड़ ही एक तो दानूँ नेगरो पो
 एक मौजूद ही तो वा सैर मे पोछ्यो नो दूजा पे
 पनिसारी बतलावैं ही के राजा भोज को दूर
 ताँणी कुण ने देन में है घर कुणो देन मे नही
 है जारे नांव का या राजा की बाई उ मरः
 लोथ्या टाढ़ है तो ऊ बोल्थो क भाई ऊ दानूँ गा
 रैवी करै है ओ कही कि वा दूंगर में रते है तो
 ऊ जार पोछ्यो वावन भँरू चौसठ जोगनीन तू दूर
 दियो खोलो मिला भट खोलर दानूँ घर दई और गा
 उलगो तो व्हा जार देत तो मोने की मईया परी है
 जामैं फूल नट-मोम हेंने नो ऐक दूनी पगे हा ओ
 छोटा दिये तो घन्निगी करहार बँटी रोमई नो हँ
 बोली कि तू यहाँ बसूँ पागो दानूँ गा जायगा तो गा
 ताने तही अब तो बछरी हो पावगो नो तो धाँरो
 गयो । पल तू वो पृष्ठियो तोय मा-पावो ओ है
 कोऊ और काये मे तेरा जीऊ है तो ऊ ओ बोली
 मैं दवा दियो और दानूँ पागो और बती कि ओ
 आदमी की बाग घाव है । पावो बती गा ओ
 आदमी पाऊ नही है । ताने गरी मरुत बाई पा
 जाय तो मैं बीने बसूँगी ? ताने बती कि मेरा मा
 हालो तो राजा भोज तो नैर है ओ मरुत है ओ
 महादेव के दामन भँरू चौसठ जोगनीन लाई दै
 फलाणे राजा ते ताँरो पावो ओ गा नीरगा मे
 नूपा है जाय मारे और बाबा नीर नीर निर नैर
 नही मो मरके बँटी र दाने मरे तो मरुत, बा-बा
 जीऊ है । तो दैर बा मर वन पन दैर दैर
 निरकरो राजा भोज तो बेबर गा दूनी कि ओ
 तो ताने दानूँ गा बाबा दई । ओ
 बा नूपा को माग पाव दानूँ गा
 दि बाबा ओई दन दानूँ गा दूरा नैर नीर
 उयो जाने बा गा निरकरो बाबा गा
 जे मोने की मईया परी दैर नीर बाबा गा

नाँटो दियो । श्रीर म्हादेव कूँ बाँवन भैरूँ चौसठ जोगनी दई श्रीर भाम्म कूँ लैर चल दियो श्रीर भानगी माना कै टिगारै भानगी सोनेरी मढैया ला घरी जामे सीस हँसे फून भडे । वा की माता नै कही कि बेटा भव भपनो सुपनो साँचो है गयो, भव चाल तेरे पिता ढिग चलै, तो राजा भोज ढिगार जार पोछै यँ दोनू मा बेटा तो वहाँ सोने की मढैया घर दई वामे सीम हँसे फून भडे श्रीर बातें राणी बोलि कि राजा हमारो सुपनो नाँचो है गो है श्रीर वे कंवर देगलै तेरो स जो हम पेट मे लँगी वारो २ घर वासो हूयो जँ सो सब काज को हो ।

— — —

एक जाट हो वाके च्यार छोरा छे, तीन तो काम करै है, नाव कोर क्वारो श्रीर एक पटैनाई पर बैठ्यो रह्यो करै हो । काम घन्दो कछू नही करै हो, तो उन तीनन ने कही काई तो कछू ही नहीं करै छै श्रीर हम कूमाते २ मरे जाय जाते याकू न्याटा करवो ज्याते इज सुसर हैरान होगो बैठ्यो नही रहगो तो ऊ न्याटो कर दियो श्रीर भँस वाट लई । तीन २ भँस घा गई च्याहन के तो वारे तकदीर में वी बैठक ही लिखी जो बैठ्यां ही रह्यो जुवान जब उन्ने कही याकी भँसन ने मार रातो तो कुमाई करँगो तो भँस मार टाली । जब वाने कही चमारन ते कि भाई इन गालन ने मौकू दे जँयो सुकेर । भट चमार ने खाल सुकेर ला दई । जब खालन ने लेर चलयो तो चलो चल २ एक उजाड ही जामे बड हो एक जब वाने कही ह्याही रह जाऊँ घर या बड मे बैठ जाऊँ तो ऊपर छटगो तो बहा च्यार चोर आये चोरी करर वो धन हो जाय लाये वाटने लगे वहा तो भटसी देणा एक चोर होजे क एो हो एक आंग तें वाने कही देखो भाई मो आंगते तो दीने नहीं है तम मत के कूडा करियो नही तमारे ऊपर अकस में ते वीजरी पड़ेगी तो उनो कपट के कूडा करे तो व्हंते वा जाट ने एक गान छोडी तो एक सग न्यूँ होती आई डाइन मे

पड २ तो काणें ने कही अरे तमने सतके कूडा नही भरे अस वीजडी पडी भजो ह्याते तो छोड़ घनकूँ भजने । भर ऊ उत्तर के न बाघ मोटर घरकूँ लिया— अतो भटानी देणा वाके भैया ने कही ई तो भार्यो घन लायो वाते कही तूँ कहाँते ले आयो इतरो घन वाने कही मेरी तकदीर में लिख्यो है तो भटसी देणा उने कही रे या सारे का घर फूक्यो तो वारे घर से आग लगा दई तो ताने कुम्हार बुलाकर बोरी मे राख भुंजार गधान पे धरवा लई एक सेर कू लेगो तो रेल मे एक साहूकार मिलगो वाके सग साऊकारको लडका हो तो वा साऊकार ने कही कै भाई हमारे लड़को हैरान हैगो है याकूँ गधापर बैठा ले तो ऊ बोल्यो कि भाई या मे म्होर भरी है । जे पाद देगो तो राख है जायगी । वाने कही कि भाई नही होगी हैजायगी तो म्होर देगे । वाने कही बैठगा तो चले जार कैन सैर मे उतरे तो वाने बोरी देखी तो वामे राख भरी है ई ही तो भटनी वेण वाने कही कि भाई ये तो राख है गई तो सेठ ने कही भाई चल तोकू म्होर भर दऊ तो सेठ ने ताकू म्होर भर दई ऊ लेर कैन अपण घरकूँ आयगो वाके भैया ने कही खात ले आये या घन वाने कही कि वा देस मे राख बिके है म्होर वराबर तम दो एक घर श्रीर वाल देते तो न्हचाल हो जातो उने ही अपरपे घर बलाय लिये तो वेउ वेचाणो गये वा राख तो राख कोण ले दो लडालर घरकूँ आ गये । ओ कही रे यारो याकूँ चलो कूवें में राडयावें तो बाघर कूँ वा पँ ले गये तो वे तो खटकेनकूँ गये श्रीर वाकूँ बाँधर गये तो एक गुवार आयो वाने पूछ्यो के तू क्या बाँध रहा है तो वाने कही कि मौकू दूसरी लुगाई करावे है सो मै करूँ कोन । वाने कही कि भैया मै करूँगो । भटसी देणवा तो बैठगो अर ऊ छेडी भेडने हारर गाव कूँ लेवो पड्यो वे आये उनो वा कूँ कू वा मे डाल दियो गाव कूँ गये वे तो वहा जार देखे तो पैलोई बैठ्यो है अरे तू कैसे आयगो तोय तो कू वा में रपडयाये तो ऊ बोल्यो के भारे बाघकर मेरते तो भोत सो रेवड लतो उनो कही रे

Abstract

[illegible]

राजा ने जार दे दिया तो राजा ने कही कौन नाई अब का विचार करे कि म्हराज आपरी अंगूठी कूवा में राखदो तो अंगूठी कूवा में राख दई फेर हुकम दियो लखटिकिया कू हमारी अंगूठी लावो नही फासी लगसी तो अमूनो हो फेर जावंगो घर कैमे बैठ्यो है कौ राजा की अंगूठी कूवा में गिर पड़ी है सो मगाई है जे नहीं आवंगी तो फांसी लगगी । भट मंडका कू ले

जाय कूवा में टरड २ करी तो सग मंडका निडयाये कही कौ भाई वयू तो कौ राजा की अंगूठी गिरी है दोम सो लावे नहीं सटारेनकू परवानेगो तो अंगूठी वाकू सोप दई वाने जार लखटिकिया कू दई राजा ने कई अब का विचार करे कौ आप के बड़े बडेन की खबर मगावो यापे तो फेर बुलार कही न हमारे बड़े बडेन की खबर लावो नही फांसी लगगी तुम्हारे तो फेर घर आर अमूनो बैठ्या ताने पूछी क्यूं बैठ्यो है तो राजा ने यू कही कौ बड़े-बूडेन की खबर लाव तौ कौ बैठ्यो रै तू में जाऊं तो जार राजा ते कही कौ म्हराज तम्बड मगावो आर मोर अरथी पै बैठदयो आर आग लगावो तो हाल हातई तम्बड मगाये आर अरथी पै बैठायेर आग लगादी तो ऊ तो सोन बिडिया ही सो घुंवाक सग फरं देरदी उडर आ बैठी घर में वन्ने कही कौ जा राजा सूं कह दे कौ तुमरे बड़े-बूडे भोत सुखी है पर घरपे कही है कौ हमारा वेटो कपूत हैगो है एक नाई नही भेजे है हमारा ढिगारे । सो वाने तीमरे दिन राजा से ऐसी ई कह दई कौ आपको नाई बुलावो है राजाने नाई ते कही कौ तू बुलावो है हमारे बाप ने ऊम कौ तुम जावो तो वैसे ही नाई कू अरथी बाघर आग लगा दई । तो नाई पज-डगो तो कई दन है गये नाई नही आवो आवे खाति सुसरा अनारमन ते उन्ने राज्य करयो उनके घर घासो है गयो ।

मृगावती-चापाई 'सवधा' कातयसु, सशाधन

अगरचन्द्र नाहटा

पूना विद्यापीठ पत्रिका के मन १९६५ के अंक में श्री मुरलीधर शहा सम्पादित 'नमय-सुंदर कृत मृगावती चापाई' नामक लेख प्रकाशित हुआ है। नमयसुंदर के 'मृगावती गन' के आधार से मेरे भ्रातृ-पुत्र भवरलाल ने 'नती मृगावती' नामक पुस्तक मवन् १९८६ में लिखी थी जो हमारी अभय जैन ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुई। हमारे अभय जैन ग्रन्थालय में ५-६ प्रतिधा है और हमने इसका सम्पादन भी कर रखा है। सम्भव है अगले वर्ष तक प्रकाशित भी हो जाए।

श्री मुरलीधर शहा को इसकी एक ही प्रति मिली और वह भी काफी पीछे की है। अतः मूल रचना का सम्पादन ठीक से नहीं हो पाया। कहीं-कहीं पाठ त्रुटित और अशुद्ध रह गया। पर उन्होंने जो कवि और रचना के सवध में प्रकाश डाला है उसमें भी कुछ बाने मनोधन योग्य हैं। उन्होंने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित मेरे लेख का तो काफी उपयोग किया है पर सवत् २०१३ में प्रकाशित हमारे 'नमयसुंदर कृति कुसुमाजली' ग्रंथ को वे नहीं देख पाये, अन्यथा कुछ नवीन ज्ञातव्य उन्हें मिल जाता।

श्री शहा के लेख में लिखा गया है कि काश्मीर यात्रा में नमयसुंदरजी भी अक्बर के साथ थे, पर वे साथ नहीं गये थे। वाचक महिमराज ही अक्बर के साथ काश्मीर यात्रा में गये थे। सवत् १६४९ में अष्टाहानिका (अष्टातिका छपा है, वह अशुद्ध है) महोत्सव में जिननिह सूरि ने समयसुंदर को वाचक पद में अलंकृत किया, लिखा है, वह भी ठीक नहीं है। जिननिह सूरि को भी उसी समय जिनचन्द्रसूरिजी ने आचार्य पद दिया था और नमयसुंदरजी को भी जिनचन्द्रसूरिजी ने ही वाचक पद दिया था। मवत् १६६८ में मुस्तान में नमयसुंदरजी ने 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' की रचना की, लिखा गया है, पर यह उनकी रचना नहीं है। नमयसुंदर के नाम पर लगभग ५०० से अधिक ग्रन्थ मिलते हैं, लिखा है, रचनाये अवश्य ५०० से अधिक हैं पर उन सबको ग्रन्थ कहना उचित नहीं होगा। वैसे नमयसुंदरजी की ५६३ लघु रचनाओं का संग्रह हमने अपने 'नमयसुंदर कृति कुसुमाजली' में प्रकाशित भी कर दिया है पर छोटे-छोटे गीत और पदों को ग्रन्थ कहा जाय या नहीं? यह प्रश्न बना ही रहता है।

समयसुंदर की 'मृगावती चापाई' का क्यानाम देते हुये लिखा गया है कि जैन जगत में महाराज चेडा और कोणिक की उतनी ही प्रसिद्धि है जितनी वेदिक जगत में ऋग्वेद और पाण्ड्य की। पर वास्तव में महाराज चेडा की ऋग्वेद-पाण्ड्य की तरह प्रसिद्धि नहीं है। नींदरे गूढ के कथासार के अन्त में जहाँ मृगावती का निर्वाण लिखा है वहाँ केवलज्ञान उत्पन्न हुआ लिखा जाना उचित था।

मृगावती चरित्र मवधी ९ रचनाओं की सूची दी गई है उनमें से पन्नी ८ जैन विद्वानों द्वारा रचित हैं और उनकी कथा एक ही है। बुद्धदेव यदि जैनित्व कर्मियों की रचनाओं में जिन मृगावती का चरित्र है वह जैन मृगावती ने सर्वथा भिन्न है। केवल नाम नाम्य में कारण सूची

में एक मात्र गिता देना उचित नहीं है। मृगावती, यामिनी भान वाली कथा तो कुतुबन की मृगानती कथा में भी भिन्न है। जैन कवि चन्द्र कीर्ति ने यामिनी भानु मृगावती की रचना की है जोर इसकी कथा गान रूप में स्वतन्त्र लेख में मैं प्रकाशित कर भी चुका हूँ।

ममयमुन्दर की मृगावती चौपाई की रचना का मूल आधार 'कथा सरित्सागर' को बतलाना भी ठीक नहीं है। कवि ने जैन कथा न्योत का ही अनुसरण किया है। 'कथा सरित्सागर' का कुछ भी उपयोग नहीं किया गया है। अतः श्री मुरलीधर शहा ने "'बृहद् कथा मजरी' को ममयमुन्दर उपर्युक्त कथा-भाग की रचना ममयमुन्दर ने की हो ऐसा लगता है" लिखते हैं। ये दोनों रचनाओं की तुलना के लिये उद्धरण दिये हैं, पर वे पूरे मेल नहीं खाते। दोनों की कथाओं में जहा-जहा ममानता है वहा अकस्मात् कुछ भावों या शब्दों का मेल खा जाना और बात है। वास्तव में ममयमुन्दर ने जैन-कथा-न्योत, विशेषतः देवभद्रसूरि के 'मृगावती चरित्र' काव्य, का ही आधार लिया है।

मवैया, देगी, गोडी, केदार, जयथी मोरठ, तोडी आदि को अप्रसिद्ध राग बतलाना भी ठीक नहीं है। वास्तव में मवैया, वस्तु, दोहे, चौपाई आदि तो प्रसिद्ध छन्द हैं और भूपाल, केदार आदि राग-रागिनी भी प्रसिद्ध ही हैं।

अन्त में उन्होंने इस रचना के दोषों का विवेचन करते हुये लिखा है कि "कवि ने पात्रों के नामों में गड़बड़ी कर दी है", पर वास्तव में जैसा कि ऊपर कहा गया है, कवि की रचना का आधार जैन न्योत ही है, 'अतः कथा सरित्सागर' के नामों से तुलना करके कवि का दोष निकालना मगंधा अनुचित है। दूसरी जो दो बातें लिखी गई हैं वे भी वास्तव में दोष रूप नहीं हैं। कवि अपने ममय की प्रसिद्ध बातों या वस्तुओं का उपयोग करता ही है। वह कथा नायक के ममय की स्थिति का ही वर्णन करे, यह न जरूरी ही है और न स्वाभाविक ही है।

'मृगावती चौपाई' के पाठ में दो तरह की भूलें हैं। एक, शब्द का सन्धि-विच्छेद नहीं-ठीक नहीं हो पाया, इसमें अर्थ-संगति में गड़बड़ी होती है। दूसरे या तो लिपि को पढ़ने या शब्दार्थ को ठीक न समझने के कारण गलत पाठ छप गया है। यहाँ केवल प्रारम्भ की दो टालों तक के पाठ के महत्वपूर्ण संशोधन उदाहरणार्थ नीचे दिये जा रहे हैं।

पद्यांक	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
१	वैरुदु	वीनवु
३	प्रजननी	प्रजुननी
५	जिमगेह	जिनगेह
५	मीलई धिक	सील अधिक
८	ईत्यादिक	ईत्यादिक
९	()	मु
दा. पहली ४	गुमीनई	गुरुनड
७	माहेराली धामथी	माहरा लीधा मथी
८	कु ममनीम म्रजा	कुमम नी म्रजा
१०	नी पायी	दीपायी

पद्यांक	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
ढाल दो २	ऊपरे	ओप रे
३	मीठलीरे बाध्यो	मीठलीरे लाल बाध्यो
६	न वलँ श्रेहलगार रे	नवलँ स्नेह रे
७	वदन	वदन
७	तसूम तिणका माल रे	तनु मोनिन का माल रे
१०	झूली	कुअली
१३	भारतारनी	भरतारनी
अब अन्तिम ढाल वारहवी की कुछ अशुद्धियों का शुद्ध पाठ यहा दिया जा रहा है-		
१	इग्यारमी	वारहवी
२	भीवगावे	अति चगा वे
३	सिहखडा	महर बडा
३	देण्या	देण्या
४	मुलताणा	मुलताणी
४	.. गर	नगर
४	मुप	मुप्य
४	वछकावहु	गछ का बहु
२	परमल है	मरम लहइ
५	मुवदी तावे	मु वदीता वे
५	राहड	रीहड
७	मरुवर	मरु घर
७	भातिवे	भानि वे
८	सोहइ	मुहइ
९	कनके	पनक
९	अलुए	अलूणी
९	वीरागी	वीरगी
९	नवमी	न चगी
११	इग्यारमी	वारहवी
११	दर्णिदा	दिपदा
१३	मृ जम	मुजम
१३	सुणता	घणे
१५	जगीम	जगीमा

तुलसीदास कृत प्रश्नोत्तर रत्नमाला

श्री अग्रचन्द नाहटा
नाहटो की गुवाड, बीकानेर

‘विश्वम्भरा’ वर्ष ५ अंक ३ में कालीदास रचित प्रश्नोत्तर रत्नमाला प्रकाशित की थी। उसके बाद हमारे सग्रह की प्रतियों को देखते हुए तुलसीदास कृत प्रश्नोत्तर रत्नमाला एक सग्रह प्रति में और उपलब्ध हुई, जिसे यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है।

कालीदास की तरह तुलसीदास भी प्रसिद्ध कवि हैं। जिस तरह कालीदास नाम से कई कवि हुए हैं, उसी तरह तुलसीदास नाम वाले भी कई कवि हो गये हैं। अतः प्रस्तुत प्रश्नोत्तर रत्नमाला सुप्रसिद्ध रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास की ही है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यह उनकी रचना है या अन्य इस नाम वाले तुलसीदास की रचना है पर है यह महत्वपूर्ण। क्योंकि एक तो यह सर्वथा अज्ञात है, दूसरी बात यह है कि रचना में प्रश्नोत्तर के माध्यम में बहुत सस्ते में सारपूर्ण बातें बताई हुई हैं। ये सभी के लिये उपयोगी एवं मनन करने योग्य हैं। प्राप्त प्रति १६वीं शताब्दी की लिखी हुई है। इसकी अन्य शुद्ध एवं प्राचीन प्रति मिल जाती तो और ही अच्छा होता। अन्तिम पद्य में रचयिता का नाम तो नहीं है पर लेखन प्रशस्ति में श्री तुलसीदास कृत लिखा हुआ है।

(पाठ अत्यंत अशुद्ध है—सम्पादक)

प्रश्नोत्तर रत्नमाला

अपार ससार समुद्र मध्ये, समुज्जतो मे शरण किमस्ति ।

गुरो ! कृपालो ! कृपया वदंत, द्विश्वेशपादावुज दीर्घं नौना ॥१॥

बधो हि को यो विषयानुराग , कावा विमुक्ति विषये विरदित. ।

कोवास्ति घोरो नरक स्वदेह , तृवनालय न्वर्ग पदं किमस्ति ॥२॥

नगरं न त श्रुति जातम् बोध, को मोक्ष हेतु, प्रथित स एव ।
द्वारं निर्मितं नरकस्य नारी, का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ॥३॥

नेने मुग्ध वन्तु नमाधिनिष्ठो, जागर्ति को वा सदसद्विवेकी ।
ते ननुव नति निर्जेंद्रियाणि, तान्येव मित्राणि जितानि कानि ॥४॥

कोवा दन्दिरो हि विनाल तृष्णः श्रीमाश्र को यस्य समस्ति तोष ।
जीवन्मृत कस्तु निरुद्यमो यः, कोवा मृत स्या त्सुखदा निराशा ॥५॥

पागो हि को यो ममताभिधात, समोहयत्येव का सुखे स्त्री ।
कौ धान्महान्धो मदना तुरोयो, मृत्युश्च को वा पण्यश स्वकीय ॥६॥

कोवा गुण्योऽन हितोपदेष्टा, शिष्यस्तु को यो गुरु भक्त एव ।
को दीर्घं रोगो भव एव साध्ये, किमौषध तस्य विचार एव ॥७॥

किं भूषणाद् भूषणं मस्तिशीलं, तीर्थं परि किं स्व मनो विशुद्ध ।
किं मित्रं हेय कनकच काता, श्लाघ्यं सदा किं गुरु वेद वाक्यं ॥८॥

के हृतयो ब्रह्म गते स्तु सति, सत्सगतिवति विचार तोषा ।
के मति सतो सिलवीतरागा, अपास्त मोहाः शिव तत्त्वनिष्ठा ॥९॥

कोवा ज्वर प्राण भृता हि चिन्ता, मूर्खोस्ति को यस्तु विवेकहीनः ।
काय मियाका शिव विष्णु भक्ति, किं जीवत दोष विवर्जित यत् ॥१०॥

त्रिशाहि का ब्रह्मगतिप्रदा या, बोधोस्ति को यस्तु विमुक्ति हेतुः ।
तो नाम आत्मा वना मोहि वेदो, जित जगत् केन मनो हि येन ॥११॥

गूरात्महाशूरतमोस्ति कोवा, मनोजवाणं व्याथितो न यस्तु ।
प्राज्ञानि धीरयव गमस्ति कोवा, प्राप्तो न मोहं ललना कटाक्षैः ॥१२॥

विषाद्विष किं विषया. ममस्ता, दुखी सदा को विषयानुरागी ।
धन्योस्ति को यस्तु परोपकारी, कः पूजनीयो ननुतत्र दृष्टि ॥१३॥

नवान्ववम्याम्वपि किनं कार्यं, किंवा विषेय विदुषा प्रयत्नात् ।
मन्दहृत् पाप पठन त्ववर्म, ससारमूल हि किमस्ति चिन्ता ॥१४॥

विज्ञात् महाविजितमोस्ति कोवा, नारां पिशाच्या नतु वचितोयः ॥
का शृंगला प्राण भृताहि नारी, दिव्य वृथ कत्व ममन्त दैन्यं ॥१५॥

जातु न शक्य हि किमस्ति सर्वं, योपि त्मनोयच्छाङ्गं ततीय ।
 का दुस्त्यजा सर्वं जनं दुराणा, विद्याविहीन पशुरस्ति कोवा ॥१६॥
 वासो न सग सहकं विधेयो, मूर्खश्च पापश्च खलश्च नीचः ।
 मुमुक्षुणा किं त्वरितं विधेयं, सत्सगतिं निर्ममतेज-भक्ति ॥१७॥
 लघुत्वं मूलं च किमर्थितं च, गुरुत्वं धीर्जं यद् याचनं किम् ।
 जातोस्ति को यस्य पुनर्न जन्म, कोवा मृतो यस्य पुनर्न मृत्यु ॥१८॥
 मूकोस्ति कोवा वधिरश्च कोवा, युक्तो न वक्तुः समये समर्थः ।
 सत्यं सुपथ्यं न शृणोति वाक्यं, विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी ॥१९॥
 तत्त्वं किमेकं शिवद्वितीयं, किं मुद्रमं सच्चरितं यदस्ति ।
 किं कर्म कृत्वा न च शोचनीयं, कामार्त्तिकसारिसमर्चनारत्य ॥२०॥
 शयो मंहाश कत्तरोस्ति कोवा, कामं सकोपान्तं लोभं वृष्ण ।
 ना पूर्यते को वपयं श एव, किं दुःखं मूलं ममताभिमान ॥२१॥
 किं मडनं साक्षरता मुखस्य, सत्यं किं भूतहितं यदेव ।
 त्यक्ता सुखं किं स्त्रियमेव सम्यग् देयं परं किं त्वभयं मदैव ॥२२॥
 कश्चास्ति नाशो मनसो हि मोक्षः, क्व सर्वथा नाति भयं विभुक्तौ ।
 शल्यं परं किं निजं मूर्खतैव, के केइनु पास्या गुरुं वस्त्रं वृद्धा ॥२३॥
 उपस्थिते प्राणं हरे कृताते, किमस्ति कार्यं सुधिया प्रयत्नात् ।
 वायं चित्तं सुखदयं मम मुरारिपादावुजं मेव चित्तं ॥२४॥
 के दस्यव सति कुवासनारया, यः शोतेकं सदं सिप्रविद्यं ।
 मातेव का या सुखदा प्रविद्या, किमेधते दानवशात् सुविद्या ॥२५॥
 कुतोहि भीतिं सततं विधेया, लोकापवादां श्रवणं जानना त्वं ।
 कोवास्ति वधुः पितरौ च को वा, विपत्सहायं परिपालको यो ॥२६॥
 बुध्वा न बोद्धुं परिशिष्यते किं, गिर्वं प्रगातं सुप्तं बोधं रूपं ।
 ज्ञाते कस्मिन् विदितं जगत्स्यात् सर्वान्मं ब्रह्मणि पूर्णं रूपे ॥२७॥
 किं दुर्लभं सद्गुरुं रस्ति लोके, सत्सगतिं ब्रह्म विचारणा च ।
 त्यागोहि सर्वस्य शिवात्मबोधः, किं दुर्जयं सर्वं जनं मनोज ॥२८॥

पत्नी पत्नी तिन के एनि धर्म, प्राचीतशास्त्रोंऽपि न चात्म बोध ।
 किं तद्विषय ज्ञानि मुचोपमा स्त्री, के जयवो मित्र वदात्मजाया ॥२६॥
 विष्णुचक्र किं घन दीवनायु, दान पर किं च सुपात्र दत्तम् ।
 यत् गते रूप्य मुनि निहार्य, किं किं विधेय मलिन शिवार्चा ॥३०॥
 किं तमं यन्म्रीतिहर मुरारे, क्वासं यान कार्या. सततं भावाश्चौ ।
 ग्रहनिग किं परि चिन्तनीय, ससार मिथ्यात्व शिवात्म तत्त्व ॥३१॥
 कठ गता वा श्रवण गता वा, प्रस्वोत्तराख्या मणि रत्नमाला ।
 तनोतु मोद विदुषा नुरम्या, रमेश गौरीश कथेव सद्य ॥३२॥
 ॥ इति श्री तुलसीदास कृत प्रश्नोत्तर रत्न माला संपूर्ण ॥
 अथय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर प्रति स. ७३८७
 पत्रांक २५-२६, १६ वीं शताब्दी लिखित ।

—)०(—

हिन्दी विश्वभारती के चन्द्रानुसंधान विभाग की अपूर्व उपलब्धि

यह गर्व विदित है कि अपोलो ग्यारह के चन्द्र यात्रियों को २१ दिन तक एक परमावृत्त वैज्ञानिक मदन में इमलिए रखा गया था कि वे पृथ्वी पर चन्द्र के किसी मारक कीटाणु का प्रसार न कर सकें। परीक्षण में सावधानी सर्वथा प्रशंसनीय श्री परन्तु हिन्दी विश्वभारती के चन्द्रानुसंधान विभाग की ओर से दिनांक १३-४-६६ की नार्वेजिक मना में वेदमनीषी श्री हनुमानप्रसाद जी द्वारा शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट रूप में यह घोषित कर दिया गया था कि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार चन्द्र मानक तत्वों में सर्वथा गून्थ है और वह जीवन के अनेक पोषक तत्वों से परिपूर्ण है। परीक्षण में भी यही सिद्ध हुआ अतः वैदिक विज्ञान की यह उपलब्धि सर्वथा अभिनन्दनीय एवं विशेष रूप में गवेषणीय है।

{ विमर्श }

‘अक्षर बत्तीसी’ के रचयिता रचनाकाल और शुद्ध पाठ

ॐ अक्षरचंद नाहटा

‘शोध पत्रिका’ वर्ष १९ अंक ४ में श्री रतनलाल मेहता ने ‘मुनि हेमत कृत अक्षर बत्तीसी’ प्रकाशित की है। वास्तव में यह बत्तीसी बहुत ही प्रसिद्ध रही है। इसकी ३ पद्यांगर और २-३ गुटकाकार प्रतियां हमारे संग्रह में हैं। इसके रचयिता का नाम ‘हेमत’ नहीं, मुनि महेस है और रचना सवत् भी सं० १७५० न होकर, सं० १७२५ है। हमारे संग्रह में अक्षर बत्तीसी और राचा बत्तीसी एक साथ लिखी हुई एक प्रति है। जो सवत् १७४२ के आसोज सुदी १४ गुरुवार को रिणी नगर में सुआविका बाई लाली के वाचने के लिये भावसागर गणि ने लिखी है। अतः सवत् १७५० वाला पाठ तो निश्चित रूप में पीछे में बदला हुआ है। सं० १७४२ की तो लिखी हुई इसकी प्रति ही मिलती है और उगमें उसका रचनाकाल स्पष्ट रूप से सं० १७२५ दिया हुआ है। यथा—

मतरइमइ पचवीस मइ. संवत कीयउ वलांण ।

उवइपुरइ उहिमकी, मुनि महेस हित आंण ॥३४॥

सं० सवत् १७४२ वर्षे आसू सुदि १४ दिने श्री गुरुवासरे उपाध्याय श्री ५ श्रीभाव प्रमोदजीगणि वराणा मते वासी भावसागर गणि ना लिखितमस्ति श्री रिणीनगर मध्ये सु-आविका बाई लाली वाचनार्थम् ॥

दूसरी प्रतिया भी १८वीं शताब्दी की लिखी हुई है और उन सबमें अन्तिम पद्य में रचयिता वाले पाठ में मुनि महेस ही है, हेमत नहीं।

श्री रतनलाल मेहता को जो प्रति मिली है वह काफी पीछे की है। उसका पाठ भी काफी अशुद्ध है। कहीं पाठ परिवर्तन भी किया हुआ है और ३० वा पद्य नया जोड़ा हुआ मात्रम पटना है। क्योंकि हमारी प्रतियों में वह पद्य नहीं है और कुल पद्यों की संख्या ३४ ही है, ३५ नहीं। शुद्ध पाठ पुनः प्रकाशित करना आवश्यक समझकर दो प्रतियों के आधार में सम्पादित पाठ पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

वर्णानुक्रम के अक्षरों के प्रारम्भ से रची जाने वाली बावनी, बत्तीसी, बाग्यदो आदि रचनाओं के सम्बन्ध में मेरा लेख बहुत वर्ष पहले 'मधुकर' में प्रकाशित हुआ था। उसको कुछ परिवर्द्धित कर नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित किया गया था। उस प्रकार की रचनाएँ सबसे अधिक हमारे अभय जैन ग्रन्थालय में ही प्राप्त हैं और मैंने प्रयत्नपूर्वक ऐसी रचनाओं की विशेष खोज की है। गोपालगज के प्रो० कृष्णनाथयंग प्रसाद 'मागध' ने इस विषय पर शोध प्रबन्ध लिख कर पी-एच. डी की डिग्री प्राप्त की है।

अक्षर बत्तीसी की रचना उदयपुर में हुई है और वहाँ १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में खरतरगच्छ, तमागच्छ, विजयगच्छ और लोकगच्छ के उपाश्रय थे। अन. मुनि महेश उन्ही गच्छों में से किसी परम्परा में हुये होंगे। श्री रत्नलाल मेहता ने मेवाड़ भूपण मोतीलालजी की परम्परा में इनके होने का अनुमान किया है, वह ठीक नहीं लगता। मोतीलालजी के पास अक्षर-बत्तीसी का एक पत्र प्राप्त हो गया, इसी से श्री मेहता ने यह अनुमान कर लिया। पर वह पत्र तो बहुत पीछे का है और किसी अन्य प्रति से नकल कर ली गई है।

यहाँ एक जिज्ञासा भी मुझे है कि श्री रत्नलाल मेहता ने मेवाड़ भूपण मोतीलालजी को वारहपंथ का मुनि लिखा है, सो तेरहपंथ और स्थानकवासी सम्प्रदाय का तो मेवाड़ में प्रचार रहा है। वारहपंथ की क्या परम्परा रही है? इस पर श्री मेहता या अन्य कोई जानकार व्यक्ति प्रकाश डाल सके तो अच्छा हो। वारहपंथ के पवर्त्तक कौन थे? उनकी मान्यता में दूसरों से क्या अन्तर था? अब तक उनकी परम्परा में कौन कौन हुये हैं और अभी कौन हैं? इन सब बातों की जानकारी प्रकाश में लाई जाय। इस पंथ के साहित्य के सबंध में भी खोज करके प्रकाश डाला जाय। आशा है 'वारहपंथ के सम्बन्ध में जानकार व्यक्ति आवश्यक सूचनाएँ शीघ्र ही प्रकाश में लायेंगे।'

१ वारहपंथ सम्प्रदाय और स्थानकवासी सम्प्रदाय दोनों एक ही सम्प्रदाय हैं, इसका एक अन्य नाम वाईसपंथी सम्प्रदाय भी है। स्थानकवासी सम्प्रदाय से जब आचार्य सन भोखरणजी ने वि० स० १८१७ में अपना सम्बन्ध विच्छेद कर तेरापंथ सम्प्रदाय की स्थापना की। उसके बाद स्थानकवासी सम्प्रदाय को तेरापंथी सम्प्रदाय से भिन्न प्रदर्शित करने के लिये उसे वारहपंथी या वाईसपंथी नाम से पुकारा जाने लगा। वारहपंथ शब्द का प्रचलन अधिकतर मेवाड़ प्रदेश के गांवों में होता है।

इस प्रकार वारहपंथ सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक, मान्यता, परम्परा, साधु एवं साहित्य वही है जो स्थानकवासी सम्प्रदाय के हैं।

‘अक्षर वत्तीसी’

कना ते किरिया करी, करम करो ते चूर ।
 किगीया विण रे जीवडा, सिवनगरी हड दूर ॥ १
 गगा कम्म खय करो, खिमा करो मन माहि ।
 नाति करी नेवो मदा, जिणवर देव उछाहि ॥ २
 गगा गग्ग न कीजीयड, गरव कीया जस हाण ।
 गरव कीया थी गुण गलै, गरव न करो अयाण ॥ ३
 घघा घर घग्गी तजो, घर घटि राखउ कार ।
 कुटव महु स्वारथ लगै, जम सेती विवहार ॥ ४
 नना निरति करो मदा, विरति करो मन माहि ।
 विरति विना रे प्रागीया, दुरगति लेसी साहि ॥ ५
 चचा चोगी परि हगे, चोरी करम चडाल ।
 विजड चोग चोरी थकी, नरग गयो ततकाल ॥ ६
 छछा छलिन कीजीयै, छल माया नउ मूल ।
 छल करि ते सीता हरी, दश गिर^१ देखो सूल ॥ ७
 जजा जोर न कीजीयड, जिण तिण सेती ताणि ।
 जोर कीयां जुगतउ नही, आखै दुनी अयाण ॥ ८
 भक्ता भूठ न बोलियड, भूठइ अपजस होड ।
 वमु राजा भूठै थकी, दुरगति जातो जोड ॥ ९
 नना नमण करउ मदा, नमतां नव निधि होड ।
 देव गुरु माता-पिता, हेत धरै सह कोड ॥ १०
 टटा टेक न छाडीयै, धरम ध्यान रह रीति ।
 काम देव टेकड रहो, देव परिख्या जीति ॥ ११
 ठठा ठिक माहे रहो, ठिक विण ठामि न होड ।
 ठिकथी चूका जीवडा, मिचपुर कदे न होड ॥ १२
 उडा डायण राखसी, तिसना ते घट माहि ।
 जे तिमना(ते)नवि वच्चीया, ते सुरगापुरि जाहि ॥ १३
 टडा ढाकण जगत^२ रो, जग गुरु माथै राखि ।
 परदेनी केमी गुरु, राय प्रसेणी साखि ॥ १४

 दुर्गति ।

जुगत ।

एणा नित नवकार गुणि, चवदै पूरव सार ।
 सुं दसण नवकार थी, सेठ कुले अवतार ॥ १५
 तता तीने आदरो, तीन तत सरदार ।
 देव धरम गुरु-निरमला, राखी हीर्य मभारि ॥ १६
 थथा थिरमनि राखीर्य, आतम वन अभिराम ।
 विसन सात दुरड तजो, पामो सिवपुर ठाम ॥ १७
 ददा दानज दीजीयड, दया करो^१ चित धार ।
 गज भविससलो राखीयो, मेध कुमर अवतार ॥ १८
 धधा धरमज कीजीयड, धरम थकी धन होड ।
 धरम विना रे जीवडा, सुख न दीठो कोई ॥ १९
 नना नर भवतइ लहो, वलेज आरिज खेत ।
 मानव भव छइ दोहिलो, चेत सकै तो चेत ॥ २०
 पपा पाप न कीजिड, अलगा रहीर्य आप ।
 जे करसी सो पावसी, क्या वेटो क्या वाप ॥ २१
 फफा फेर न कीजीयड, खाण दाण धन धाम ।
 फेर कीया फीको पडै, सीभइ कोई न काम ॥ २२
 ववा वापड मुगतरी, कीजै धरम मू हेत ।
 वीजी वायड सहु तजो, परमड सिवपुर खेत ॥ २३
 भभा भर जोवन समड, मनस्या राखो ठाम ।
 सील रयण घर गाठडी, वसि करि इद्री गाम ॥ २४
 ममा माया परहरो, ममता मूंकउ दूर ।
 नद राजा ममता थकी, पोहतो नरक हजूर ॥ २५
 यया जाप जपो सदा, आणी निरमल भाव ।
 जाप जापो जिण तणो, जब छूटकवारो आय ॥ २६
 ररा रीस न कीजीयड, रीम कीया तन हाण ।
 रीस कटारी ले मरै, हिताहीत नवि जाणि ॥ २७
 लला लालच दूर करि, खाण पाण वसु वेस ।
 लालच लागा जीवडा, छाडी जाय परदेस ॥
 ववा वइर न कीजीयड, वइरइ जुध विणास ॥ २८

लज्जोत्तम बैंगु यकी, कीचो कुल नो नाम ॥ २६
 मना नामउ मत करउ, जिण भायो परमाण ॥
 नाम माटे जीवडा, निहव भार्या जण ॥ ३०
 यपा पीज न कीर्जिये, जिण ही कह्यो कुबोल ॥
 मग्गुनमाली नो परे, जग माहि बाधे तोल ॥ ३१
 इहा हिन वाछो नटा, पट जीवन हितकार ॥
 हिन यकी हिन लपजै, माखै सहु ममार ॥ ३२
 प्रगर बतीमी एक ही, मवोवन हितकार ॥
 इहा ग्रन्थ बीनाग्मी, पामै भव नउ पार ॥ ३३
 मतरइसउ पचीसमड, सवत कीयउ बखार ॥
 उदइपुरि उदिम कीयउ, मुनि महेम हित जाए ॥ ३४

इनि प्रगर बतीमी समाप्ता ॥ ५० चद्र भाग लिखित । श्री विक्रमपुर मध्ये ॥

नाहटों की गुवाह

बीकानेर, राजस्थान

क्या पद्मनाभ स्वामी की प्रतिमा

कुंभा कालीन है ?

● रामवल्लभ सोमानी

गीत पत्रिका (त्रैमासिक) वर्ष १६, अंक ४ में श्री बलवल्लभ सिंह मेहता का शोध
 लेख प्रकाशित हुआ है । विद्वान लेखक ने पद्मनाभ की प्रतिमा को कुंभा कालीन माना है
 किन्तु प्रतिमा पर उन्नीसों लेख में इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती है । लेख के पूर्व भाग
 में वर्द्धमान शाह के पूर्वज महाराज नवलगा का प्रसंगवश उल्लेख है । यह महाराजा
 कुंभा का प्रधान मंत्री था और मैंने महाराजा कुंभा पुस्तक में इस परिवार का विस्तृत
 परिचय दिया है । प्रस्तुत लेख दि० ग० १८१६ का है । इसको ध्यान पूर्वक पढ़ने से

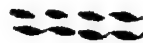
प्रबंध-पंचशती के कुछ शब्दों पर विचार

(श्री भैरवलाल नाहटा)

शुभशील गणि कृत प्रबंध-पंचशती की हस्त लिखित प्रति हमने लगभग २५-३० वर्ष पूर्व पूना-भाडारकर ओरिएण्टल इन्स्टीट्यूट से मगा कर पढ़ी थी और उसके कुछ प्रबंधों का सार व नोट लिये थे। इस ग्रन्थ में लगभग ६२५ छोटे-मोटे प्रबंध हैं जिनमें कई ऐतिहासिक, कई पौराणिक और कई लोक-साहित्य से सम्बन्धित हैं। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को हाल ही में मुनिगज श्री मृगेन्द्र मुनिजी महाराज ने सु-सम्पादित कर प्रकाशित करवा दिया है। डा० हरिवल्लभ भायाणी जैसे भाषा-विज्ञान के मूर्धन्य विद्वान द्वारा लिखित विस्तृत निबन्ध-भूमिका से इस ग्रन्थ की शोभा में प्रशंसनीय अभिवृद्धि हुई है। शब्दसूची में इतनी महत्त्वपूर्ण सामग्री भरी पड़ी है कि देश्य शब्दों के संस्कृत प्रयोगों का अध्ययन और उनका इतिहास जानने का यह प्रशस्त साधन हो गया है। इसके बाद सदिग्ध अर्थ वाले २१ शब्दों की सूची दी है, जिनमें कुछ शब्दों का यहाँ स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया जाता है:—

- (१) पृ० २५२-१८ में 'कपरिका' शब्द कंवली के लिए प्रयुक्त है। यह गुप्त नोध पत्रिका नहीं परंतु एक प्रकार का पूठा है, जिसमें दुहरा तिहरा लपेटकर फुटकर पत्रादि रखे जाते हैं। अतिचार आदि में कंवली को ज्ञानोपकरण में गिनाया गया है।
- (२) पृ० २१४-१७ में चुरडक' शब्द का पर्याय 'चरुडो' राजस्थान में प्रसिद्ध है। चरु, चरी और चरुडा उसी के आकार-भेद के नाम हैं।
- (३) पृ० ५६, १४-२०-२१ में 'दण्डालक' का अर्थ 'मोती नी एक जात' लिखा परन्तु यह नाम योगी (दण्डो) के दण्ड से सम्बन्धित है।
- (४) पृ० १३७-२६ में 'निछारक' का अर्थ 'घर का एक भाग' लिखा है। इसका अर्थ निसारा स० निस्सर, निकलने का स्थान गृहद्वार कहलाता है। राजस्थान में यह शब्द आज भी प्रयुक्त है। दीवाली के दिन गृहद्वार पर जो दीपक बिछा जाता है उसे 'निछारे का दीया' कहते हैं।
- (५) पृ० १७८-२-६ में 'प्रशक्किका' या शिक्किका का अर्थ माधुबो की सोनी होना है। शिक्किका का भाषा पर्याय छीका है।

- (६) पृ० ३४६-२९, ३४७ १ में भूतेल का राजस्थानी-पर्याय भूतूलिया है। गोलाकार गतिशील वायु को कहते हैं। जीव विचार में इसे 'मडलि' वायु कहा है।
- (७) पृ० ५४, १२-१६; ५५, १२-१४ का 'रउलाणी' शब्द राउल का स्त्रीलिंग है, जो योगिनी का ही पर्याय है।
- (८) ४४, ८७, १२५ में प्रयुक्त 'वत्तुलक' का अर्थ नानो गोल वाटको (?) नहीं परन्तु टमका पर्यायवाची 'वटलोई' अर्थात् दाल, चावल आदि रांधने के काम में आने वाले भग्निये के लिये आज भी प्रयुक्त है।
- (९) पृ० १०६, ६-१०-२० में प्रयुक्त 'बलयमुख' मच्छियों का जाल (?) नहीं परन्तु बेंन या बांस के बने हुए उम छोटे घड़े को कहते हैं, जिसका मुंह चूड़ी जितना होता है। उसमें छोटी मछलियां एकत्र की जाती हैं।
- (१०) पृ० ५४-८७ में शकरा फल का अर्थ बीजोरु (?) लिखा है परन्तु कथावस्तु को देखते यह कोई फल नहीं परन्तु कटारी का वह फलक है, जिसे चतुर कलाकार ने शकंग में निर्माण किया है पर फीलाद की भांति मालूम देता है और राजा ने उसको चबाकर 'रउलाणियों' को जीता था।
- (११) पृ० २३३-१० में प्रयुक्त संचारक 'पाखाना या गंदे नाले' के प्रयोग में है।
- (१२) पृ० १६६-१० में 'ममारित' शब्द का अर्थ खसी किया हुआ बैल और अममारित अर्थात् साड-सूरज का साड कहलाता है, जिसे खेती-बाड़ी, गाड़ी, घानी आदि किसी भी काम में न लेकर खुला छोड़ दिया जाता है।
- (१३) पृ० १६६, ४-८ में 'सहोलिक' शब्द तेल की उस हांडी को कहा है, जिसको सहोलिया अर्थात् राजस्थानी में 'झावलिया' कहते हैं।



राजस्थानी भाषा का गौरवपूर्ण मासिक

❀ म रु वा णी ❀

सम्पादक — श्री रावत सारस्वत

वार्षिक मूल्य १०)

सम्पर्क :—

राजस्थान भाषा प्रचार सभा

डो. २८२, मीरां मार्ग, वनी पार्क

जैपुर (राजस्थान)

चौसठ योगिनियों की प्राचीन नामावलियां

○ श्री अजरचन्द्र नाहटा

चौसठ योगिनियों की बहुत प्रसिद्धि है। योगिनियों की कई मूर्तियां प्राप्त हैं और मत्स्य मंथन भी चौसठ योगिनियों के नाम में प्रसिद्ध है। योगिनियों के नामों की संख्या चौसठ बताते जाने पर विभिन्न ग्रन्थों और नामावलियों में जो नाम मिलते हैं वे एक दूसरे से काफी भिन्न हैं। चौसठ योगिनियों की नामावलियां फुटकर पत्रों और ग्रन्थों में जो भिन्न भिन्न मिली थीं उनको कई सूचिया 'शोध पत्रिका' में प्रकाशित मेरे दो लेखों में प्रकाशित कर चुका हूँ। अभी दो प्राचीन, जैन ग्रन्थों में नामावलि और मिली है जो एक दूसरे से काफी भिन्न हैं उन्हें यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है—

जैनाचार्य चित्तयचन्द्र सूरि रचित 'काव्य शिखा' नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लालभाई दल-पाभाई भारतीय संस्कृत विश्वामंदिर से प्रकाशित हुआ, अभी मेरे देखने में आया, उसमें चौसठ योगिनियों के नाम इस प्रकार दिये हैं—

'बहुली, वाली, काविनी, कुमारी, कागी, जलहरी, सीयली, नीलकण्ठ (कठी), पारवी, तूननी, गरुरा, पिमला, अनगभीहा, दाहला, श्रीवर्मा, नन्दा, श्रीमगला, श्रीसिद्धा, श्रीईसावी श्रीमवरा, अमरा, मनमा, मनमा, विषहरा, अलोभी, अग्रीव, अयकुमारि (री), धवल कुन्दा, भिम्भला, मकारिणी, जालामालिनी, महलछि (छी), दाहना, रमा, मरसा, कदला, मागिदया, तानिका, इरमिद्धि, वाडगि (गी), कोमला, मयूरनी, अभयकुमारी, जया, विजया, नेना, विनेना, भैरवी, महमाया, आशापुरा, एकलव्यवीरी, ईश्वरी, पिप्पला, ऊ, विमलागिनि (गी), विम्व, सुनरेणा, जालिन्धरी, स्वमीपली, द्विषाडमी, द्विषपतंगी, विम्वानिनी, विम्वगी, महलव ।'

सन् १९६७ में जैनाचार्य सोमनिलक सूरि ने लघुसूत्र की ज्ञानदीपिका टीका बनाई, उसमें १८ वें सूत्रों की टीका करते हुए योगिनी विद्या के प्रसंग में चौसठ योगिनियों के नाम छान सत्र दिये हैं।

"इदं तु योगिनीना विद्या । अतस्तत्प्रमणेन योगिनी दोष विधान यन्त्रमपि भक्तो नराणां प्रसादते । ताना नामानि चैतानि—

ब्रह्माणी, कुमारी, चाराही, शरुगे, इन्द्राणी, ककाली, कगानी, कानी, महाकानी, चामुण्डा, ज्वालामुखी, कामाख्या, कपालिनी, भद्रकाली, दुर्गा, घर्मिका, ललिता, गौरी, सुमगला, रोहिणी, कपिला शूलकरा, कुण्डलिनी, त्रिपुरा, कुन् कुन्ना, भैरवी, भद्रा, चन्द्रावती, नारसिंही, निरजना, हेमकान्ता, प्रेतामना, ईशानी, वैश्वानरी, वैष्णवी, विनायकी, यमघण्टा, हरसिद्धि, मरस्वती, तोनला, बन्दी, श्रमिनी, पद्मिनी, चित्रिणी, वारुणी, चण्टी (प्रत्यन्तरे नारायणी), वनदेवी, यमभगिनी, सूर्यपुत्री, सुशीलता, कृष्णायागनी, रक्ताक्षी, कालरात्रि, आकाशी, श्रेष्ठिनी, जया, विजया, धूमावती, चाणोद्वरी, वात्स्यापिनी, श्रमिहोत्री, चक्रेश्वरी महाविद्या, ईश्वरी ।

योगिनी दोष विधान यत्र और योगिनी चक्र विधान दस प्रकार है—

यत्र चेदम्—

२३	१८	१५	८
११	१२	१६	२२
१७	२४	६	१४
१३	१०	२०	२०

तामा कु कुम -गोरोचनाया यत्रमिन्द्र त्रिमिन्या
विधिवत् फल पुष्पगन्ध धूप मुद्रा नैवेद्य दीप पूजा
कृत्वा शुचिकेकाग्रमना ,

चतु पट्टियोगिनी— सर्वा अपि अधिरामिषधीर-
मुराप्रिया केलिकोलाहलगीननृत्परता लघ्वी नरुणी

प्रोढा वृद्धा भ्रमरानि सूर्यशिवरणी विकटाक्षी विकटदन्ता मुत्कलकेशा. करानजिह्वा
अनिसूक्ष्ममधुरधर्धरोत्वटनिनदाः स्थिर चपलाः शान्तरोद्रच्छलवलघान प्रभयिष्णुश्चतुर्भुजा
दिव्यवस्त्राभरणा अक्रुशपाशकपालकर्त्तिका त्रिशूलकरवालङ्घ्यचक्रगदाकुन्तधनुर्वज्राद्यापुष
विभूषिता विष्कम्भदि-सप्तविंशति योग-अश्विन्यादि-अष्टाविंशतिनक्षत्र-मेपादिद्वादशराशि-
चन्द्र-सूर्यादिनवग्रह-नारसिंहवीर-क्षेत्रपात्र-माणिभद्रमाहिम्नादियथपरिवृता । पूर्वोक्त मन
जपेत् । योगिनीदोषो याति ।

चतु पट्टि ममाख्याता योगिन्य काम रूपिका ।

पूजिता प्रतिपूज्यन्ते भवेयुर्वन्दाः सदा ॥१॥

इति योगिनी चक्र विधानमप्यत्रान्तर्भूत ज्ञेयमिति श्लोकार्थः "

चौमठ योगिनियों के स्वरूप और उनके ध्यान के सम्बन्ध में तत्त्व णा वर्णन मिलता है । उसमें चौमठ योगिनियों के नाम भी दिये हैं, अतः तत्त्वविधि के ध्योग महा उद्घाटन किये जा रहे हैं—

"पट्टाष्टकं प्रवक्ष्यामि योगिनीनां नमामतः ।
 पाताष्टकं सुवर्णाभिं त्रिशूल डमरुं तथा ॥
 पाशं चापि दधानं तद् ध्यायेत् नवार्गं सुन्दरम् ।
 मयं द्वितीयकं ध्यायेत् दक्षमाना मया कुशम् ॥
 दुष्यन् पुस्तकं वीणा सुद्वेत मणिभूषणम् ।
 पञ्चानां घन्ति, गदाकुन्तं दधानं नील वर्णकम् ॥
 ध्यायेत् तृतीयं शुभद-मष्टकं शुभलक्षणम् ।
 गन्तं नेटं पट्टिशं च दधानं परशुं तथा ॥
 धूम्रवर्णं चतुर्थं तद् ध्यायेदष्टकं मादुरातः ।
 घृन्नं नेटं च परिवर्त्तयन् भिडिवालं तथैव च ॥
 पञ्चमाष्टकमेतद् द्विष्येत् स्यात् सुमनो हरम् ।
 पीतं पट्टं मुनीरक्तं—मष्टकं च तट्टिप्रभम् ॥
 कुन्तां दिक् समं प्रोक्तं पट्टा रम्याष्टमान्तकम् ।
 नामानि—दिव्ययोगा महायोगा मिथ्ययोगा महेश्वरी ॥
 पिशाचिनी टाकिनी च कालरात्री निशाचरी ।
 ककाली रोद्रचेताली हुंकारी भुवनेश्वरी ॥
 ऊर्ध्वकेशी विष्णुपाक्षी शुष्काङ्गी नर भोजिनी ।
 फट्कारी वीरभद्रा च धूम्राक्षी कलहप्रिया ॥
 रक्ताक्षी राक्षसी घोरा विश्वरूपा भयकारी ।
 क्षमाक्षी चोग्र चामुण्डा भीषणा त्रिपुरान्तका ॥१॥
 वीर कीमारिका चण्डी वाराही मुण्डधारिणी ।
 भैरवी हस्मिनी क्रोध-दुर्मुखी प्रेत-वाहिनी ॥११॥
 गङ्गागदीर्घा लम्बोष्ठी मालती मन्त्रयोगिनी ।
 अस्थिनी चक्रिणी ग्राहा ककाली भुवनेश्वरी ॥१२॥
 वटकी वाटकी शुभ्रा क्रियादूती करालिनी ।
 गन्धिनी पद्मिनी क्षीरा ह्यसवा च प्रहारिणी ॥१३॥
 लम्बीदन्तकामुखी लोला काकद्विष्टरधोमुखी ।
 पुण्डरीकाक्षी घोरा कपाली विषभोजिनी ॥१४॥
 चतुः पट्टिं समाख्याता योगिन्यो वरमिद्विदाः ।"

सन् १४६८ में रचित 'आचार दिनकर' में ६४ नाम इस प्रकार हैं—

ब्रह्माणि,	कौमारी,	वाराही,	शाकनी
इन्द्राणी,	ककाली	कराली	कानी
महाकाली,	चामुण्डा,	ज्वालामुखी,	कामरूप
कापाली,	भद्रकाली,	दुर्गा,	प्रम्विका
ललिता,	गौरी,	सुमंगला,	रोहिणी
कपिला,	शूलकटा,	कुडनीनी,	त्रिपुरा
कुरुकुला,	भैरवी,	भद्रा,	चन्द्रावती
नारसिंही,	निरजना	हेमकान्ता,	प्रोत्तमाननी
ईश्वरी	महेश्वरी,	वैष्णवी,	वैनायवी
यमघटा,	हरमिद्धि	सरस्वती,	नीलना
चण्डी,	शक्तिनी,	पद्मिनी	चित्राणी
शाकिनी,	नारायणी,	पद्मादिनी,	यमभगिनी
सूर्यपुत्री,	शीतला,	कृष्ण पामा,	रक्ताक्षी
कालरात्रि	आकाशी,	मृष्टिनी,	जया
विजया,	धूम्रवर्णी,	वेणुदेवी,	वात्स्यायनी
अग्निहोत्री,	चक्रेश्वरी,	महाप्रम्विका,	ईश्वरी

इसके बाद पुर देव-वीरो के नाम भी दिये हैं ।

नाहटों की गुप्त
बीकानेर (राज०)



सू मालवनगर ति की प्राचीन क ला

❁ श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल

भारत के प्राचीन इतिहास में मालव, शिवि यौधेय, अर्जुनायव आदि गणराज्यों में अपनी-अपनी मुद्रा एवं कलाकृतियों द्वारा विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। इनकी विप्लवशा के परिणामस्वरूप यहाँ विदेशी शासकों का साम्राज्य स्थापित न हो सका और इसी कारण राजस्थान में गुप्त साम्राज्य का भी विशेष प्रभुत्व दिखाई नहीं देता है। इसी कारण में ईसा की तृतीय शती में बड़वा, वर्नाला, नादसा, विजयगढ़, नगर आदि कतिपय स्थानों पर उपस्थितों की प्रतिष्ठा सम्भव हुई, जो इस भूप्रदेश पर वैदिक यज्ञों के अनुष्ठान की मात्री है।

जयपुर क्षेत्र में नेवाड़ के पास 'रेट' व टोक से १८ मील दूर उनियारा ठिकाना का 'नगर' के दो स्थल भी मालवों के प्रमुख केन्द्र थे। रेड^२ की खुदाई^३ द्वारा बहुत महत्वपूर्ण दृग्मूर्तियाँ मिली, कदा मक नामग्री और मीमे की बनी मुद्रा मिली है, जिस पर 'मानवप्रनन्द' राष्ट्रीय लिपि में उत्कीर्ण है। इस स्थल का विशेष परिचय आगामी लेख में प्रस्तुत किया जायगा। इस समय हम अन्य केन्द्र 'नगर' की महत्वपूर्ण सामग्री का सविशेष पन्नित्र दिनांक का प्रस्तुत करेंगे।

- १ द्रष्टव्य-मेरा लेख-नागरी प्रचारिणी पत्रिका, ५६ (२) संवत् २०११, पृष्ठ ११६-१२०
- २ मविस्तार विवरण के लिये द्रष्टव्य-डॉ० के० एन० पुरी कृत 'एक्सकेवेशन्ज एट रेड' जयपुर :
- ३ १८५६ में सर्वेक्षण के समय मुझे यहाँ पर ऐतिहासिक लाल-काली धरातल [Black & Red ware] वाली मृद्भाण्ड कला की भी सामग्री देखने को मिली थी। यह चंगट के पास 'जोयपुरा' में भी उपलब्ध हुई हैं।

हि हिन्दू मन्त्रालय

११

॥ श्रीगुरुः ॥

५

१. भगवान् दत्तात्रेयजीकं मन्त्रः
मन्त्रः विष्णु, नरक, कर्मादि
विष्णु, नरक, कर्मादि
२. महोपाध्याय रामचन्द्रः
लोक-संस्कृत-विद्या-
विद्या-विद्या



मालव की प्रा

भाग
ने अर्ध-म
विमान के
छोटी सी का
देना है। उमी
मालव विमान
मालव के अर्ध-म

भाग
समय :
३ २२६ मे
a Rec. १
संग्रह के ल

97

३५

सम्बन्धी कुछ कथाओं का मूल स्रोत प्राप्त है। सिंहासन वत्तीसी की कथा का सम्बन्ध महाराजा विक्रम के साथ-साथ महाराजा भोज के साथ भी है और विक्रम की तरह ही महाराजा भोज की भी बड़ी प्रसिद्धि रही है। विक्रम अपने न्याय, दान और विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण अधिक प्रसिद्ध हुये तो भोज अपनी विद्या-विलसिता के कारण। लोक-कथाओं में कहाकवि कालिदास का सम्बन्ध इन दोनों राजाओं के साथ जोड़ा जाता है। यद्यपि यह तो निश्चित है कि कालिदास भोज से काफी पहले ही चुके हैं पर यह भी सम्भव है कि भोज की सभा में सँकड़ो बड़े-बड़े पंडित रहते थे उनमें कोई कालिदास जैसा उच्चकोटि का विद्वान् भी रहा हो। उसका नाम चाहे और हो पर अपनी विद्वत्ता के कारण लोग उसे कालिदास कहने लगे हों। या पीछे से कालिदास की प्रसिद्धि न लोक-कथाओं में भोज से भी उसका सम्बन्ध जोड़ दिया गया हो।

सिंहासन वत्तीसी की कथा का सारांश यह है कि महाराजा भोज के समय वत्तीस पुतलियों का एक सिंहासन भूगर्भ से प्राप्त या प्रकट हुआ। और जब उस पर महाराजा भोज बैठने लगे तो वत्तीस पुतलियों में से एक-एक पुतली ने भोज से कहा कि 'यह सिंहासन महाराजा विक्रमादित्य के बैठने का है, उसके जैसी दान-वीरता, न्याय-निपुणता और परोपकार वृत्ति वाला व्यक्ति ही इस सिंहासन पर बैठ सकता है। पहले म० विक्रम के इन गुणों की बात सुनलो फिर आप में ऐसे गुण यदि हों तो सिंहासन पर बैठ सकते हैं, अन्यथा बैठना उचित नहीं होगा।'।

एक-एक पुतली से एक-एक कथा महाराजा भोज सुनते हैं इस तरह इन वत्तीस पुतलियों की कही हुई कथाओं के संग्रह का नाम सिंहासन वत्तीसी रखा गया। सबसे प्राचीन संस्कृत में लिखित सिंहासन वत्तीसी सन् १३०० के आस पास की मालूम होती है। तब से लेकर १९वीं शताब्दी तक ३०-४० रचनायें इस कथा को लेकर रची गईं। बड़ौदा आरियन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट के Director मेरे विद्वान् मित्र डा० भोगी लाल सांडेसरा के निर्देशन में रणजित भाई पटेल ने शोध प्रबन्ध लिखा है। हिन्दी में लक्ष्मीदेवी सक्सेना ने डा० सत्येन्द्र के निर्देशन में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा १९६२ में इसी विषय में पी. एच. डी. की डिग्री प्राप्त की। उनके शोध प्रबन्ध का शीर्षक है—'सिंहासन वत्तीसी और उसकी हिन्दी परम्परा का लोक साहित्य की दृष्टि से अध्ययन'। अभी यह दोनों ही शोध प्रबन्ध अप्रकाशित हैं।

केवल हिन्दी भाषा में ही २०० वर्षों में सिंहासन वत्तीसी सम्बन्धी १५ ग्रन्थ रचे गये। राजस्थानी में जैन कवियों में १६वीं से १८वीं शताब्दी तक में रचित ८ काव्य प्राप्त हैं। और राजस्थानी गद्य में सिंहासन वत्तीसी के २-३ रूपान्तर मिले हैं।

इस तरह हिन्दी और राजस्थानी की करीब २५ रचनायें सिंहासन बत्तीसी की कथा को लेकर लिखी गई हैं। ज्ञात रचनाओं की सूची इस प्रकार है। सिंहासन बत्तीसी हिन्दी के रचयिता—(१) गंगाराम (२) परमसुख, (३) कृष्णदास, (४) मेघराज प्रधान, (५) सेनापति, (६) सोमनाथ (१८०७), (७) अखैराम (१८१२), (८) शिवनाथ (१८६१), (९) काजी माली (गद्य संचत् १८५८), (१०) लल्लू लाल, (११) देवी दास (१८३३), फागण सुदि ८ देवास में रचित। २—३ अज्ञात रचयिताओं के ग्रन्थ भी प्राप्त हैं। इनमें से सोमनाथ और अखैराम के ग्रन्थों का नाम सुजान विलास और शिवनाथ की रचना का नाम विक्रम बत्तीसी पाया जाता है।

राजस्थानी—सिंहासन बत्तीसी पद्य—

(१) मलयचन्द्र (१५१६), (२) ज्ञानचन्द्र (१५६८), (३) विनयसमुद्र (१६११), (४) सिद्धसूरि (१६१६), (५) हीरकलश (१६३६), (६) संघविजय (१६७८), (७) विनयलाम (१७४८), (८) अज्ञात कर्तृक (१६७१), राजस्थानी गद्य में महाराजा अनूप सिंह जी की आज्ञा से देईदान नाइता ने सिंहासन बत्तीसी लिखी। २—३ अन्य व्यक्तियों की गद्य सिंहासन बत्तीसी प्राप्त है। इनमें से एक जोधपुर से प्रकाशित भी हो चुकी है। संस्कृत में भी कई ग्रन्थ मिलते हैं जिनमें से ५ रूपान्तरों का सम्पादन विद्वान् एर्ण्ट ने किया था। उन ५ वाचनाओं का नाम उन्होंने दक्षिणी, लघु पद्य मय, जैन, वाररूच, दिया है। उनके मतानुसार दक्षिणी वाचना ही मूल कथा के सबसे अधिक निकट है। गुजरात के सुप्रसिद्ध कवि सामल ने सिंहासन बत्तीसी नामक सुन्दर काव्य बनाया और उसका काफी प्रचार भी हुआ। सामल भट्ट की सिंहासन-बत्तीसी की वार्ता १८२२ का महत्त्वपूर्ण सम्पादन डा० हरिवल्लभ भयाणी ने किया है। यह संस्करण भारतीय विद्या भवन, बम्बई सन् १९६० में प्रकाशित हुआ है। जैन विद्वानों के रचित संस्कृत सिंहासन-बत्तीसी सम्बन्धी कई ग्रन्थ हैं। जिनमें से क्षेमकर देवमूर्ति रामचन्द्र सूरि और राज वल्लभ का उल्लेखनीय है।

सिंहासन बत्तीसी की कथा इतनी अधिक लोकप्रिय हुई कि इसके कई रूपान्तर हो गये। मुसलमानों को भी इस कथा ने आकर्षित किया। खड़ी बोली गद्य में किसी मुसलमान का किया हुआ इस कथा सम्बन्धी एक रचना भण्डारकर आरिष्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना के संग्रह में देखने को मिली, पर वह अपूर्ण है। हमारे संग्रह में फारसी लिपि में लिखी हुई एक सचित्र प्रति इस कथा के सम्बन्ध में है। एक-दो वर्ष पहले नागरीलिपि और हिन्दी भाषा में लिखित पद्य बद्ध कथा की सचित्र प्रति मेने प्रपने शंकरदान नाहटा कला भवन के लिये खरीद की उसी का संक्षिप्त विवरण इस

-लेख में दिया जा रहा है। इस प्रति के ४४ पत्र ही मुझे प्राप्त हो सके हैं जिनमें १७वां अध्याय ही पूर्ण होता है। वैसे वत्तीस पुतलियों में से ११ पुतली की कथा ही इन १७ अध्यायों में आई है इस लिये २१ पुतलियों की कथा का काफी बड़ा अंश और होना चाहिये। प्रारम्भ में कवि ने इसका रचनाकाल व अपना नाम दे दिया है अन्यथा अंतिम अंश प्राप्त न होने पर रचनाकाल व रचयिता का नाम अज्ञात ही रहता। जिस कवि की यह रचना है उसकी अन्य अनेक रचनाएँ प्राप्त हैं और उनके सम्बन्ध में मेरा एक स्वतन्त्र लेख 'भगवानदास निरंजनी और उनकी रचनाएँ' शीर्षक प्रकाशित भी हो चुका है। इस कवि के रचित सिंहासन वत्तीसी की कभी तक अन्य प्रति मेरे देखने में नहीं आई। प्राप्त प्रति में १३वां और २२वां दो पत्र नये लिखे हुए हैं सम्भव है मूल पत्र फट गये या नष्ट हो गये हों।

अन्य के प्रारम्भिक पद्य नीचे जिये जा रहे हैं :—

गणपति सारद प्रणमिके, सेस महेस मनाय ।

वत्तीस लछिनी कथा की रचना करौ बनाय ।१।

सत्रह सैं सतावनौ, संवत सख्या नाम ।

सांवन सातें ससि बिना, सुर गुरु पूरन काम ।२।

चित्रगुप्त वंसी सबै, करै कथा को ध्यान ।

तिनि की प्रीति पिछांनि कै, आरंभी भगवानं ।३।

मंडभधि सुभ थान है, आनंदधन कौ राज ।

करै भगति भगवान की, मिली सब संत समाज ।४।

कहत नईसी लगति है, कथा पुरातन जान ।

पारवती सौं प्रकट करि, कही रुद्र भगवान ।५।

विक्रमराजा भरथरी, भएसु कलिकी आवि ।

कवि कालदास वरनन कीयौ, धर्म अमीं रस स्वादि ।६।

इन पद्यों से स्पष्ट है कि संवत् १७५७ के श्रावण मंडमधि और आनंदधन के समय में कवि भगवान ने की है।

प्रति के ४४ पत्रों में से अधिकांश पत्रों में छोटे या पूरे पृष्ठ के चित्र मिलते हैं। दो पत्र जो नये लिखे गये हैं उनमें भी चित्र होंगे क्योंकि वे बड़े अक्षरों में लिखने पर भी पूरा पत्र मूल पत्र के पाठ से भर नहीं पाया।

प्रारम्भ के ६ अध्याय तो भूमिका के रूप में हैं जिनमें विभ्रमादित्य जन्म निरूपण पद्य ७० पत्र ४ में ६ चित्र हैं। अन्त की पुष्पिका में ग्रन्थकार का नाम भगवानदास

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

मालव

की प्र

निरंजनी स्पष्ट रूप से लिखा गया है। “इति श्री वत्सीन लक्ष्मिनी कथा सिंहासन वत्सीनी नाम विक्रमाजीत को जन्म निरूपणो नाम पार्वती ईश्वर संवादे कवि कालिदास निरूपणो नाम मूल तसि परिभाषा कृत भगवानं दास निरंजनी प्रथमोऽध्याय ।”

द्वितीय अध्याय में ३६ पद्य ही हैं। इसमें एक पृष्ठ में पूरा चित्र है राजा भरथरी कर्म निरूपण अध्याय का नाम बतलाते हुये मूल ग्रन्थ कालिदास विरचित होने का स्पष्ट कहा गया है पर आज तक कालिदास रचित सिंहासन वत्सीनी (संस्कृत) कहीं भी जानने में नहीं आई।

द्वितीय अध्याय की लेखन पुष्पिका इस प्रकार है—

“इति श्रीवत्सी लक्ष्मिनी कथा परवती ईश्वर संवादे राजा भरथरी ।

कर्म निरूपणो नामक कवि कालिदास विरचिते मूल तीस भाषा कृते भगवानदास निरंजनी विक्रम विदेश गमनो नाम दुतीयोऽध्याय : ।”

लेख विस्तार भय से सभी अध्यायों की सभी पुष्पिका नहीं दी जा रही है। तीसरे अध्याय से १७वें अध्याय तक की पद्य संख्या और अध्यायों का विषय या कथा का निर्देश नीचे की सूची में किया जा रहा है।

- (३) पद्य २१—राजा भरथरी वन प्रवेश,
- (४) पद्य ५८—विक्रमराज वर्णन,
- (५) पद्य ६८—विक्रमाजीत वन प्रवेश,
- (६) पद्य ३८—सिंहासन प्राप्ति,
- (७) पद्य ६६—जीया पुत्री भोज प्रबोधन,
- (८) पद्य ३०—विजया पुत्री भोज प्रबोधन,
- (९) पद्य ४८—जनीयां पुत्री भोज प्रबोधन,
- (१०) पद्य ३१—अजीया पुत्री भोज प्रबोधन,
- (११) पद्य ३२—जयघोसा पुत्री भोज प्रबोधन,
- (१२) पद्य ३४—पंचघोसा पुत्री राजा भोज प्रबोधन,
- (१३) पद्य ३६—कैला पुत्री राजा भोज प्रबोधन,
- (१४) पद्य ३१—जयसेना पुत्री राजा भोज ” प्रबोधन श्रीपाल साह की कथा
- (१५) पद्य ६५—मदनमेना पुत्री राजा भोज प्रबोधन, अबोधन,
- (१६) पद्य ३२—दसई पुत्री मदन मंजरी राजा भोज प्रबोधन ।

(शेष पृष्ठ ६६ पर)

१० निजी पुस्तकालय
 नि. ११६६ शल्लाराम जी
 भाषा (मराठी)
 पुस्तक कृष्ण (पुत्रों संबंधी) काव्य

शिवजी
 १३-१-

राजस्थानी भाषा की लोक उल्लेखनीय पुस्तक कृष्ण (पुत्रों संबंधी) काव्य

राजस्थान में भी कृष्ण भक्ति का प्रचार काफी रहा है। पास ही मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि ब्रजमण्डल श्रीकृष्ण की लीला भूमि के रूप में प्रसिद्ध है। कृष्ण भक्ति के अनेक सम्प्रदाय प्रवर्तित हुए। सैकड़ों भक्त एव रीति-कालीन कवियों ने हजारों रचनायें श्री कृष्ण सम्बन्धी की है।

जैन आगम ग्रन्थों से लेकर अब तक प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, कन्नड, मराठी में श्री कृष्ण सम्बन्धी अनेकों रचनायें प्राप्त हैं जिनमें से महोपाध्याय कविवर समयसुन्दर की प्रथमाध्यास के रूप में रची हुई साम्ब प्रद्युम्न चौपाई या प्रबन्ध का कथासार यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब और प्रद्युम्न के जीवन सम्बन्धी यह रास काव्य दो खण्डों में विभक्त है जिसमें २१ ढालें, ५३५ गाययें हैं और ग्रन्थ परिमाण १५०० श्लोकों का बतलाया गया है। सवत् १६५६ की विजयदशमी को खम्भात में चातुर्मास करते हुये कविवर समय सुन्दर ने जैसलमेर वास्तव्य नाना शाल ३४

अगर चंद भवर लाल नाहटा विचार रसिक लोढा साह शिवराज की अभ्यर्थना से इस काव्य की रचना कवि ने की है।

काव्य के प्रारम्भ में कवि ने नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, वर्धमान तीर्थंकर और गौतम गणधर का स्मरण करते एव नमस्कार करते हुए प्रथमाध्यास के रूप में साम्ब प्रद्युम्न कुमार चरित्र के वर्णन करने का उल्लेख किया है। कवि ने कहा है कि ८वें अंग सूत्र में इसका सम्बन्ध सक्षेप से है पर मैं यहाँ प्रकरण के आधार से विस्तृत प्रबन्ध कह रहा हूँ। फिर जम्बूद्वीप, सीरिपुर, मथुरा, सेयादव सोरठदेश में जाकर द्वारामती नगरी बसाई आदि का वर्णन है जिसका कथासार आगे दिया ही जा रहा है। श्री कृष्णनन्दन साम्ब, प्रद्युम्न के चरित्र सम्बन्धी इस काव्य में यथा प्रसंग श्री कृष्ण का भी उल्लेखनीय विवरण दिया गया है। महोपाध्याय समयसुन्दर मारवाड़ के साचौर में जन्में और जैसलमेर के लोढ़ा शिवराज के लिये यह प्रथम रास या प्रबन्ध बनाया। यद्यपि रचना खम्भात (गुजरात) में हुई है पर भाषा राजस्थानी प्रधान है।

जुलाई, १९६७

महोपाध्याय समय सुन्दर रचित शांव

प्रद्युम्न चौपाई का कथासार

अत्याचारी कस की मृत्यु हो जाने से समस्त यादव सुखी तो अवश्य हुए किन्तु उनके चित में जरासिंधु का पूरा भय था इससे वे सौरीपुर, मथुरा आदि स्थानों को छोड़कर सौराष्ट्र देश में आये । महाराज श्रीकृष्ण ने अष्टम तप करके लवण समुद्र के अधिष्ठाता सुस्थित देव की आराधना की । देव ने प्रकट होकर याद करने का कारण पूछा तब “हमें नगर बसाने के लिये स्थान दो” । श्रीकृष्ण की इस याचनानुसार देव ने उन्हें स्थान दिया । इन्द्र की आज्ञा से धनद ने वहा आकर नगरी बसाई । वह नगरी वारह योजन लम्बी और नव योजन चौड़ी थी । हेम और मणि रत्नमय गगनचुम्बी अटालिकायें तो सबका चित आकर्षित करती थी उस नगरी का सारा अग प्रस्थग वैभव सम्पन्न था । राज-प्रसादों की तो बात ही क्या वे जो स्वयं इन्द्र के निवास-भवन से भी अधिक छटा धारण करते थे । उस नगरी के जिन मन्दिरों की शोभा तो अवर्णनीय थी उनके उत्तम तोरण

और आकाशस्पर्शी शिखर अत्यन्त ही मनोहर और चित्ताकर्षक थे । मनोहारिणी ध्वजा पताकायें वायु-मण्डल के प्रयोग (झकोरो) से उड़ती हुई जगत को अपनी प्रशस्त कीर्ती का परिचय कराती थी । इस कथन में कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है कि वह नगरी इन्द्र की अमरावती से वैभव में कई गुणा अधिक थी धनद ने इस नगरी को सर्व प्रकार की सामग्री से सम्पन्न किया । पाठक गण ! उस नगरी का नाम द्वारामती (द्वारिका) था उसी में महाराज कृष्ण न्यायपूर्वक राज्य करने लगे । श्रीकृष्ण आधे भारत के स्वामी थे । सोनह हजार मुकुटवद्ध राजा उनकी सेवा करते थे । महारानी रुक्मिणी आदि हजारों स्त्रिया थी । धन, धान्य, हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे और मणि रत्नादि की तो अपार सम्पत्ति थी जिससे वे अर्द्धचक्री (वासुदेव) पद को धारण करने वाले महाराज कृष्ण सुखपूर्वक काल व्यतीत करते थे । उनकी पटराणियों में रुक्मिणी और सत्यभामा प्रधान थी ।

सप्तसिन्धु

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को अधिक सम्मान देते थे । यह सत्यभामा के चित पर अखरता था । एक दिवस नैमित्तिक प्रभावक अयमता मुनि आहार के निमित्त रुक्मिणी के यहाँ पधारे । रुक्मिणी ने उन्हें सम्मान देकर विनय से पूछा "भगवन् । मेरे पुत्र होगा या नहीं ?" उत्तर में मुनिराज ने कहा "होगा।" इतने ही में सत्यभामा ने आकर छल से मुनि का यह वचन ग्रहण कर लिया मुनिराज तो चले गये पीछे से सत्यभामा और रुक्मिणी के परस्पर मुनिवचन के लिये विवाद होने लगा । अन्त में न्याय कराने के लिये दोनों महाराज कृष्ण के पास गई ।

सत्यभामा ने कहा "स्वामिन् । रुक्मिणी को आपने क्या सिर चढ़ा रखा है कि मुनिराज से मुझे दिये गये वचन को यह झड़पना चाहती है । राजन् न्याय कीजिये ।" और दुर्योधन से कहा "भाई । तुम्हारी कन्या मेरे पुत्र को देता" राजा दुर्योधन ने कहा "दोनों आखों में अन्तर कैसा ?" ऐसा सुनकर श्रीकृष्ण हसने लगे । सत्यभामा ने कहा "हलधर ! गिरिधर ! और दुर्योधन सब लोग सुनिये । हम दोनों में जो झूठी पड़े उसे यही दण्ड दिया जायगा । जिसके पुत्र का विवाह पहले होगा उसी के साथ दुर्योधन की प्रस्तुत कन्या का विवाह होगा और उसके

पडले में दूसरी का सिर मुँडकर केश रखे जायें ।

सत्यभामा द्वारा सब की सार्थक्य में इस प्रकार न्याय करने पर कलह शान्त हो गया, दोनों रानिया अपने आवाम में चली गई ।

इस अवसर में एक उत्तम गुण वानर्जोव सातवें देव लोक से चवन करके रुक्मिणी के उदर में अवतीर्ण हुआ । उस पुण्यवान जीव के प्रभाव से रुक्मिणी ने देव विमान का प्रधान स्वप्न देखा । उसने उसका फल श्रीकृष्ण महाराज से पूछा, उन्होंने कहा "मेरे कुल में अलकार हार के सदृश तुम्हारे पुत्र रत्न होगा ।" सत्यभामा ने ऐसा सुन कपट का आश्रय ले कल्पित स्वप्न कहा "स्वामिन । मैंने भी हर्षित चित से सूझ उल्लालता हुआ एक सुन्दर ऐरावत हाथी देखा, इस का फल क्या होगा ?" यद्यपि श्रीकृष्ण जी जानते थे कि यह कल्पित मिथ्या अर्थ पूछती है तो भी शुभ होने से उन्होंने उत्तर दिया तुम्हारे भी पुत्र होगा ।

देवयोग से सत्यभामा भी गर्भवती हुई, षडे की तरह उसका उदर बड़ने लगा । श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि गर्भकाल से अपूर्ण दिवसों में हो इसके बालक होगा ।

रुक्मिणी ने गर्भ के दिन पूर्ण होने से यथा समय एक सुन्दर पुत्र प्रसव किया ।

दासी ने महाराज कृष्ण को वधाई दी । उन्होंने इस हर्ष के उपलक्ष में उसे मुकुट के सिवाय अपने शरीर के सर्व आभूषण देकर उसका दासत्व दूर किया । द्वारिका नगरी में घर-घर पर तोरण बन्ध गये । सन्तारिया गीत गाने लगी इसी समय सत्यभामा के हृदय में धक्का लगा और उसके भी पुत्र जन्म हुआ । दासी ने आकर महाराज को वधाई दी । उनके चित्त में बहुत हर्ष हुआ । सारे नगर में उत्सव की और भी अभिवृद्धि हुई । जगह-जगह पर नाना प्रकार के नाच रंग और नाटक होने लगे ।

महाराज श्रीकृष्ण अपने पुत्र को देखने के लिए रुक्मिणी के महल में गए । रानी ने उन्हें अपना पुत्र देते हुए यत्न से रखने के लिये कहा । वह पुत्र कामदेव के सदृश रूप लावण्यवान तेज कान्ति से युक्त था । श्रीकृष्ण ने उसका नाम प्रद्युम्न रखा ।

इसी अवतर में धूमकेतू मानक देव, विमान में बैठा हुआ आकाश मार्ग से जा रहा था । उसे कृष्ण की गोद में कुमार को देखकर पूर्वभव का वैर जागृत हुआ । वह आकाश से नीचे उतर के रुक्मिणी का वेश बनाकर श्रीकृष्ण के पास आया और कहने लगा "स्वामिन । मेरा पुत्र दीजिये । बहुत देर हो गई । ऐसा सुनते ही

श्रीकृष्ण ने तत्काल उसे दे दिया । वह धूमकेतू देव प्रद्युम्नकुमार को लेकर वैताद्वय पर्वत के भूत रमण नामक उद्यान में गया ।

दुष्ट अर्धवसाय वाला वह धूमकेतू देव विचार करने लगा "क्या इस बालक को पत्थर की चटानों पर पछाड़ दूँ । या इस भीषण कृपाणा से शिरोच्छेदन कर अपना बदला लूँ । या इसे क्षुधा, प्यास, शीत, और उष्णादि परिग्रह से इसे भयकर कष्ट दूँ । इन विचारों से उसने बालक को आकाश (व्योम) से नीचे गिराया वह पर्ण पर जा कर पड़ा किन्तु चरम शरीरी उसी भव में मोक्ष जानेवाला होने से उसे कौन मारने को समर्थ था । अतः बाल भी बाका न हुआ । देव योग से एक विमान में कालसवर नामक विद्याधर जाता था उस स्थान पर आते ही उसका विमान स्तम्भित हो गया । कालसवर ने नीचे देखा तो बालक खेल रहा है । उसने प्रद्युम्नकुमार को उठा लिया और सोचा मेरी स्त्री कनकमाला के कोई पुत्र नहीं है । इससे वह रात-दिन इसी चिन्ता में रहती है वह उमे ही यह पुत्र दूँगा ।

कालसवर विद्याधर उस बालक को पुत्रवत् समझकर मेघकूट नगर में अपने घर ले गया और अपनी पत्नी को देते हुए कहा, "प्रिये । तुम्हें देव ने यह पुत्र दिया

है । लालन-पालन करके अपनी अभिलाषा पूरी करो ।” कनकमाला ने प्रद्युम्न-कुमार को ले लिया वह पाच धायो से पाला जाने लगा । कालसवर ने अपने घर में पुत्र-जन्म का उत्सव किया । लोगो में यह प्रसिद्धि की कि मेरी स्त्री गूढ-गर्भा थी । आज पुत्र प्रसव हुआ ।

थोड़ी ही देर पश्चात् रुक्मिणी ने श्री कृष्णजी से प्रद्युम्नकुमार को मागा । उन्होने कहा “प्रिये ! यह क्या कहती हो । मैंने तो तुम्हें उसी समय दे दिया था ।” रुक्मिणी ने कहा “स्वामिन ! यह हसी का समय नहीं है मुझे अपना प्राण प्रिय पुत्र दीजिये ।” कृष्ण ने कहा “भद्रे ! मैं क्या करूँ मैंने तो तुम्हें दे दिया था ।” ऐसी देव माया देखकर महा राज कृष्ण भी धैर्य न रख सके । वे समझ गये कि रानी को पुत्र नहीं मिला है । हाय, कहा गया मेरा सर्वस्व ! क्या मैं अपने ही से स्वयमेव लुट गया । श्रीकृष्ण को इस प्रकार विलाप करते देख रुक्मिणी भी समझ गई कि ये हसी नहीं करते हैं । किसी देव न हमें छल लिया है ।

राणी रुक्मिणी पुत्र वियोग से अचेत हो गई । दासियो ने उसे शीतलोपचार करके सचेत किया । वह विलाप करने लगी । “रे रे दुष्ट देव मैंने तेरा स्था अपराध किया जो मुझे पुत्र वियोग का महान दुःख अनुभव करना पड़ा । हा देव ! मुझे उत्कृष्ट निधान देकर क्यों छीन लिया ।

यदि तुम्हें मुझे दुःख ही देना था तो जन्मते ही मुझे क्यों न मार डाला ! मैंने पूर्व-जन्म में ऐसा क्या पाप किया था जिससे यह परिणाम मिला । मैंने ऋषि मुनियों को सत्ताप दिया होगा । किसी को मिथ्या कलक दिया होगा, या पराई निन्दा की होगी या पराये धन का हरण किया होगा, या चींटियों के विचर में उनका विनाश करने के लिये उष्ण जल डाला होगा, या पक्षियों के घोंसलो को तोड़ कर उनको उनके बच्चो से वियोग कराया होगा या किसी गाय को बछड़े से वियोग कराया होगा । अवश्य ही किसी न किसी भयकर अन्तराय का फल मुझे भोगना पड़ा है । इस प्रकार विलाप करते-करते वह पागल की तरह प्रलाप करने लगी । सारे नगर में कुमार के हरण से हा हाकार छा गया । सब यादव लोग दुःखी हुये । नगर में हर्ष था तो एक मात्र सत्यभामा को । सो भी भविष्य में अपने पुत्र के विवाह की महत्त्व-काक्षा का ! पाठकगण ! इसमें इसमें सत्यभामा का कोई दोष नहीं है “सौत मिट्टी की भी बुरी” इस लोकोक्ति अनुसार वह । एक दूसरे के प्रति सहानु-भूति का नहीं होना स्वाभाविक ही है ।

श्रीकृष्ण, बलभद्र, आदि इस विषय में विचार करने लगे कि किसी दुष्ट देव या विद्याधर ने कुमार का हरण किया है । इतने ही में देश विदेश में भ्रमण करने वाले नारद मुनि यादव-सभा में आये । श्रीकृष्ण

ने उन्हें सत्कारपूर्वक नस्मकार कर बैठने को आसन दिया। ऋषि ने बैठते ही पूछा पुरुषोत्तम । आज तुम्हारा मुख-कमल तज विहीन क्यों दिखता है ? किस चिन्ता में व्यग्र हो ?" वासुदेव ने उत्तर दिया "महर्षि ! क्या बताएं, रुक्मिणी एक मात्र प्यारे पुत्र प्रद्युम्नकुमार को किसी दुष्ट देव या विद्याधर ने हरण कर लिया है आप समस्त भूमण्डल पर विचरण करने वाले हैं, कहिये कुमार कहां मिलेगा?" नारद बोले "वासुदेव ! इस भरतखण्ड में आगे तो सशयछेदक अहमत्ता मुनी थे, किन्तु वे तो हाल ही में मोक्ष सिधारे । अब महाविदेहक्षेत्र जाकर विरहमान तीर्थंकर श्री सीमधर स्वामी से यह वृत्तान्त पूछकर तुम्हारा सन्देह दूर करूंगा ।

इसी भरतक्षेत्र की पूर्व दिशा में महा-विदेह क्षेत्र है । वहां के पुष्कलावती विजय में भगवान श्री सीमधर प्रभु विचर कर भव्य जीवों को प्रतिबोध दे रहे हैं । देवों के रचे हुए समवसरण में करोड़ों प्राणियों के समक्ष तीर्थंकर भगवान मधुर ध्वनि देशना-उपदेश दे रहे थे उसी समय नारद वहां पहुंचा । नारद विनय और भक्ति सहित प्रभु को वन्दना करके बैठ गया । नारद ने कहा "प्रभो ! श्री कृष्ण वासुदेव के पुत्र प्रद्युम्न कुमार का किने अपहरण किया यह सशय दूर कीजिये । प्रभु ने फरमाया "पूर्व वैर के कारण से

धूमकेतु नामक देव ने प्रद्युम्नकुमार का हरण कर के वेंतद्व्या पर्वत पर लेजाकर फेंक दिया । किन्तु वह पुण्यात्मा बालक न मरा । उसी समय कालसवर नामक विद्याधर वहां आकर उस बालक को अपने घर ले गया और अपनी स्त्री कनकमाला को दे दिया । अब वह कुमार उसी माता के पास सुखपूर्वक रहता है" नारद ने कहा "स्वामिन् ! उस देव का कुमार से क्या द्वेष था ? कृपया उसका पूर्व भव सुनाइये" प्रभु ने कहा "हे नारद इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में मगध नामक एक देश है । उस देश में शालिग्राम नाम का एक गाव है । उस गाव के पास मनोरम उद्यान में सुमना नामक यक्ष का स्थान है । वहां पर सीमदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था । उसकी भार्या अग्नि की कुक्षि से अग्निभूति और वायुभूति नामक दो बालक हुए । वे बालक १४ विद्या सम्पन्न और रूप-गुणयुक्त थे । उन्होंने वाद में अनेक धर्मावलम्बियों को जीत लिया था । इससे उन्हें अभिमान हो गया था । एकदा नन्दीवर्द्धन नामक ज्ञानी मुनिराज वहां आकर समोसरे समक्ष नागरिक जन उपदेश सुनने के लिये आये । मुनि की देशनाउपदेश सुनकर सब लोग जैन धर्म की प्रशंसा करने लगे । यह प्रशंसा सुनकर अग्निभूति वायुभूति सहन न कर सके वे दोनों आकर मुनि से कहने लगे "अरे मुण्ड ! क्यों वृथा बर्कवाद करता है ? हमारे से शास्त्रार्थ

कर।" मुनि ने कहा "अहो विप्रो ! तुम लोग कहां से आये।" दोनों भाइयों ने कहा "शालिग्राम से।" मुनि ने कहा "मैं यह नहीं पूछता हूँ। मैं पूछता हूँ कि तुम किस भव से यहाँ आये। ऐसा सुनकर वे दोनों सम्यक्ज्ञान का अभाव होने से निरुत्तर हुये। मुनि ने कहा "तुम्हारे पूर्व भव का वृत्तान्त श्रवण करो।"

"तुम लोग पूर्व भव में मासभक्षी शृगाल थे। किसी हालिक के क्षेत्र में अधिक आहार करने से तुम दोनों मर गये। हाली ने अपने खेत में मरे हुए शृगालों को देखा। वह हाली काल धर्म पाकर अपनी ही पुत्र वधु की कृषि से उत्पन्न हुआ। उसे पूर्व भव स्मरण होने से वह सोचन लगा कि अपने पुत्रों को पिता और अपनी पुत्र-वधु को माता कैसे कहा जाय ? अतः वह मूक बन गया और सब कुछ समर्थ होने पर भी बोलता नहीं है। यदि प्रतीति करनी हो तो उस बालक को यहाँ लाओ। हमारे वचनों में वह बोलन लगेगा। सभा में उपस्थित कुलुहलप्रिय लोगो ने बालक को बुलाया। मुनिराज ने उसे समझाया—मनुष्य भव पाकर चुप रहने से काम कैसे चलेगा ? लज्जा छोड़कर बोलो। यह ससार नाटक है। नटुवे की भाँति यह जीव विविध वेष धारण करता है। अपने-अपने कर्मों के प्रभाव से पुत्र पिता और बहू का माता हो जाना कोई आश्चर्यजनक नहीं।

"मुनिराज के वचनों से वह मूक बालक

बोलने लगा। उसने पूर्व जन्म की बातें बतलाकर लोगों को आश्चर्य में डाल दिया। लपकती हाली और दूसरे भी बहुत से व्यक्ति, प्रतिबोध पाकर दक्षित हो गये। मुनिराज की सर्वज्ञ प्रज्ञा होने लगी। मानमृष्ट विप्र रात्रि के समय मुनिराज का मारने के लिए आये। ज्योंही तलवार निकाली, यक्ष ने उन्हें रोक कर दिया। लोग एकत्रित होकर उन्हें धिक्कारने लगे। माता-पिता आकर आक्रन्द करते हुए पुत्रों को छोड़ने के लिये प्रार्थना करने लगे। यक्ष ने कहा—दीक्षा लेना स्वीकार हो तो छोड़ूँ। अन्त में चारित्र्य पालन में अनमर्थ होने के श्रावक धर्म स्वीकार करने पर यक्ष ने उन्हें छोड़ दिया। वे दोनों भ्राता निरतिचार श्रावक धर्म पालन कर छ पत्न्योपम आयुष्य वाले देव हुए। दोनों भ्राता स्वर्ग से च्यव कर गजपुर नगर में अरहदास के यहाँ पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। बड़े भ्राता का नाम पूर्णभद्र और छोटे का नाम मणिभद्र था। वे दोनों बड़े विचक्षण और शुद्ध श्रावक धर्म पालन करने वाले थे। आचार्य श्री महेन्द्र के पधारने पर अरहदास ने मुनि-व्रत स्वीकार कर लिया। एक दिन दोनों भ्राता गुरु वन्दनार्थ जा रहे थे तो मार्ग में एक

चाण्डाल और एक कुतिया को देखकर उनके मन में स्नेह उत्पन्न हुआ। उन्होंने गुरु महाराज से इसका कारण पूछा तो मुनिराज ने कहा—तुम्हारा पूर्व भव का पिता मोमदेव मर कर सखपुर में जितशत्रु नामक छत्रपति राजा हुआ और अग्निना मोमभूति ब्राह्मण की प्रिया रुक्मिणी हुई। एक बार रुक्मिणी ने राज्यागण में आने पर उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर राजा ने मोमभूति को मिथ्यादोषारोप कर निकाल दिया और रुक्मिणी को अपने अन्तःपुर में रख लिया। एक हजार वर्ष तक रुक्मिणी के साथ सुख भोग कर जितशत्रु राजा नरकगामी हुआ। वहाँ तीन पत्न्योपम की आयु पूर्ण कर किसी वन में हरिण हुआ। वहाँ धीवर द्वारा मारा जाकर मनुष्य और फिर हाथी हुआ। उसने जातिस्मरण द्वारा अपना पूर्व वैभव देखा और पश्चात्ताप पूर्वक अनशन स्वीकार कर लिया। अठारह दिन निराहार रह कर वह तीन पत्न्योपम की आयुष्य वाले देवलोक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से च्यव कर जितशत्रु का जीव कर्मवश चाण्डाल हुआ और रुक्मिणी भी भव भ्रमण करती हुई इस भव में कुतिया हुई है। पूर्व भव के माता-पिता होने से तुम्हारे चित्त में इनके प्रति स्नेह उत्पन्न हुआ है। दोनों

भ्राताओं ने जातिस्मरण ने अपना पूर्व भव देखा और जाकर माता पिता को प्रतिबोध दिया। चाण्डाल ने वैराग्य पाकर मान मलेखना की आँग नन्दीश्वर में देव हुआ और कुतिया मर कर के राज कन्या हुई। पूर्णभद्र और मणिभद्र ने एक बार फिर गुरु महाराज से पूछा कि वे दोनों मर कर कहा गये हैं? मुनिराज ने कहा एक तो देव हुआ है और दूसरी यहाँ राजकन्या हुई है। दोनों भ्राताओं ने राजकन्या को प्रतिबोध दिया। वह समय लेकर देव-गति को प्राप्त हुई। दोनों भ्राता निरतिचाग श्रावक धर्मपालन कर प्रथम देव लोक में देव हुए। वहाँ से च्यव कर गजपुर नगर में विश्वकसेन राजा के यहाँ मधु और कैंठभ नामक पुत्र हुए। नन्दीश्वर देव भी भव भ्रमण करता हुआ वटपुर का स्वामी कनकप्रभ राजा हुआ। कुतिया का जीव उसकी चन्द्रमा नामक रानी हुई। राजा विश्वकसेन ने मधु को राज्याभिषिक्त कर कैंठभ को युवराज पद दिया। एक बार राजा मधु भीम पत्नीपति को जेतकर कनकप्रभ के यहाँ वटपुर आया। राजा कनकप्रभ ने मधु को भोजनादि से सत्कृत कर मणि, माणिक, हाथी, धाँटे भेट किये पर मधु उसको पत्नी चन्द्राभा के लावण्य पर मुग्ध हो गया

22

12-15-1

12-15-1

12-15-1

12-15-1

12-15-1

12-15-1

12-15-1

और न देने पर कनकप्रभ को पराजित कर मधु उसे जबरन ले गया। रानी के विरह में कनकप्रभ पागल हो गया और सारा राजपाट छोड़कर गली गली भटकने लगा।

एक बार पागल कनकप्रभ भटकता हुआ गजपुर आया। चन्द्रामा ने उसे भटकते देखकर मन में सोचा मैं ने बड़ा अनर्थ किया। एक बार राजा मधु ने विलम्ब से आकर चन्द्रामा के समक्ष परदारिक को दण्डित करने की बात कही। रानी ने कहा परदारिक तो पुण्य है स्वयं अपनी ही बात सोचिये। इसी समय कनकप्रभ अकस्मात् गली से जा रहा है था। जिसे चन्द्रामा ने सकेत से दिखाया। राजा मधु उसे देख कर बड़ा पश्चाताप करने लगा। मुझ पापी को धिक्कार है जिसने लम्पटतावश यह दुष्कृत्य किया इन तुच्छ सासारिक सुखों के पीछे परभव में दुर्गति का द्वार खोलना। इस प्रकार वैराग्य वासित होकर भ्रातृपुत्र को राजपाट सौंप कर युवराज कैटभ के साथ विमलवाहन गुरु के पास दीक्षित हो गया। दोनों भ्राता हजारों वर्ष धर्म पर्यन्त निर्मल चारित्र्य पालन कर अनशस्य आराधना पूर्वक सातवें स्वर्ग गये। पागल कनकप्रभ तीन हजार वर्ष तक अनेक दुख भोगते हुए मर कर

धूमकेतु ज्योतिषी देव हुआ। वहा से च्यव कर तापस हुआ और तपश्चर्या के प्रभाव में वैमानिक देव हुआ। पर मधु के महद्दिक होने के कारण उमे बदला लेने का अवसर नहीं मिला वहा से च्यव कर वह मनुष्य भव कल्के पुन धूमकेतु देव हुआ। इसी समय मधु का जीव सातवें देवलोक से विवर कर श्रीकृष्ण के घर प्रद्युम्नकुमार के रूप में जन्मा। धूमकेतु उसे देखकर पूर्व भव के वर वन अपहृत कर ले गया।

नारद ने पूछा— भगवन् ! अब रुक्मिणी को कब पुन मिलाप होगा ? सीमधर स्वामी ने कहा —सोलह वर्ष पश्चात् सब बातें यथा स्थित होगी।” नारद, प्रभु की स्तुति कर प्रद्युम्नकुमार को देखता हुआ द्वारिका पहुँचा। यादव लोक चातक की भाँति नारदमुनि की बाट देख रहे थे। नारद के मुख से सारा वृत्तान्त श्रवण कर सब लोग अत्यन्त प्रमुदित हुए। रुक्मिणी ने हर्ष से रोमांचित होकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके सीमधर स्वामी को नमस्कार किया।

प्रद्युम्नकुमार, कालसवर विद्याधर के यहा बड़ रहा था। जब वह तरुण-वय प्राप्त हुआ तो उसके अद्भुत रूप-लावण्य को देखकर कनकमाला मुग्ध हो गई। कर्म की गति

विचित्र है, जिस बालक को पुत्रवत् पालन कर बड़ा किया उसी के प्रति आसक्त होकर वह सोचने लगी—जिस वृक्ष को पोष कर बड़ा किया उसका मधुर फल कौन नहीं खाता ? यदि मैंने इसके साथ सुख नहीं भोगा तो जीवन ही व्यर्थ है। उस कामान्ध ने लज्जा त्याग कर कुमार से कहा—मैं तुम्हारी माता नहीं हूँ। तुम मुझे स्वीकार करो। मैं विद्याधर गौरी-वश की पुत्री हूँ। अतः गौरी विद्या तथा पति द्वारा प्राप्त प्रशस्ति विद्या मैं तुम्हें दूंगी। फिर उसने कुमार की उत्पत्ति का सारा वृत्तांत बतलाया। कुमार ने कहा—“पहले तुम मुझे विद्या दो, मैं तुम्हारी बात मानूंगा।” कनकमाला ने कुमार को विद्या दी। कुमार ने उससे कहा—“एक तो तुम मेरी माँ हो और अब गुरुणी भी हो गई। अतः मेरे द्वारा दुष्कर्म की आशा ही मत रखो। भविष्य में ऐसी बात मुख पर भी नहीं लाना।”

कनकमाला की मनो इच्छा पूर्ण न होने पर वह क्रुद्ध हो गई पर उसे हाथ मलने के सिवा कोई उपाय नहीं था। प्रद्युम्नकुमार सक्लिष्ट वातावरण से क्षुब्ध होकर घन में चला गया। कनकमाला ने पीछे से अपने अंग को स्वयं विदीर्ण कर वस्त्र फाड़ डाले और केश पाश खोलकर जोर-जोर से पुकारने लगी। पति, पुत्र और परिजनो के एकत्रित होने पर उसने प्रद्युम्नकुमार के अत्याचार की कथन पुकार की। कालसवर

ने प्रद्युम्नकुमार का पीछा किया उनके पुत्र समैन्य आगे पहुँचे। प्रद्युम्नकुमार ने विद्या के बल से मगध में सबको परास्त कर दिया। जब स्वयं कालसवर आगे आया तो कुमार ने पिता के साथ युद्ध करना अनुचित जानकर सारा वृत्तान्त कह दिया। कालसवर, त्रियाचरित्र से अवगत होकर शान्त हो गया। इसी समय नारद मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने प्रद्युम्नकुमार से कहा तुम्हारी माता श्रीकृष्ण की पटरानी रक्मिणी है और मत्स्यभामा से हठ की बात बभानुक के विवाह की मारी बातें बताकर द्वारिका चलने के लिए प्रेरित किया। प्रद्युम्नकुमार तत्काल विमान में बैठ कर नारदमुनि और कालसवर के साथ द्वारिका नगरी के बाहर आ पहुँचा।

प्रद्युम्नकुमार विमान को बाहर छोड़कर द्वारिका की शोभा देखने के लिए गया। नगर में भानुक के विवाह की चहल-पहल थी। सर्वत्र वाजिन्त बज रहे थे, वर घोड़े पर चढ़ी कन्या को प्रद्युम्नकुमार हरण कर लाया और देव विमान में लाकर रखा। नारदमुनि ने उसे यह कह कर आश्वस्त किया कि, ये श्रीकृष्ण के पुत्र हैं, तुम निर्भय रहो। प्रद्युम्नकुमार ने वानर रूप धारण करके माली से उद्यान के फल मागे। उसने कहा—‘भानुक के विवाह निमित्त मैंने फल देने से सत्यभामा रुष्ट हो जावेगी। फल न पाकर वानर ने क्रुद्ध होकर तत्काल वाटिका विध्वस्त कर डाली। फिर अश्व

रूप धारण कर सारे नगर में सिंह की भाँति निर्भय घूमने लगा । उसने सत्यभामा के जल व घास के भण्डार को नष्ट कर डाला । इसके बाद सौदागर के रूप में एक घोड़ा बेचने के लिए लाया, भानु परीक्षार्थ उस पर बैठ कर दौड़ाने लगा तो वह उल्टे मूँह गिर कर लोगों में हँसी का पात्र हुआ ।

अब प्रद्युम्नकुमार ने ब्राह्मण का रूप बनाया और हाथ में पचाग लेकर सत्यभामा के यहाँ गया । उसने कुब्जा दासी को एक दम स्वस्थ और लावण्यवती बना दिया । दासी ने भोजन के निमित्त सत्यभामा के महल में पधारने की प्रार्थना की । विप्र को बाहर छोड़कर दासी जब सत्यभामा के पास आई तो उसके दिव्य रूप को देखकर वह उसे पहचान न सकी । फिर कुब्जा दासी द्वारा शक्तिशाली ब्राह्मण के आने की बात सुनकर उसे आमन्त्रित किया । सत्यभामा ने ब्राह्मण रूपधारी कुमार से निवेदन किया कि मुझे रुक्मिणी से अधिक लावण्यवती बना दीजिए । ताकि वह श्रीकृष्णजी के चित्र से उतर जाए । ब्राह्मण ने कहा—तुम्हारा रूप विस्मयकारी हो जाएगा पर उसके लिए विधि बहुत सी करनी होगी । सत्यभामा तो रुक्मिणी से स्पर्धा में उतरी हुई थी, “अर्थी दोषी न पश्यते” के अनुसार उसने कहा—आप जैसा कहेंगे वैसा ही करूँगी, आप शीघ्र विधि

बताइए । ब्राह्मण ने उसका मन्त्रक मुण्डाकर सारे शरीर में मसी पुतवा दी और “हृदयुट स्वाहा” मन्त्र का जाप करने के लिए बँठा दिया । ब्राह्मण रूपी कुमार स्वयं भोजन करने बैठ गया और विवाह के निमित्त बने सारे लड्डू-पक्वान को शेष कर गया । दासी ने तग आकर उसे उठा रिया ।

प्रद्युम्नकुमार ने ब्राह्मण वेश त्याग कर साधु का वेश धारण किया और रुक्मिणी के महल में जा कर निर्भयतापूर्वक श्रीकृष्णजी के सिंहासन पर बैठ गया । रानी रुक्मिणी उस समय चिन्तातुर बैठी हुई थी । उसने उठकर स्वागतपूर्वक वन्दन किया और प्रार्थना की कि यह देवाधिष्ठित श्रीकृष्णजी का सिंहासन है इस पर वे या उनके पुत्र ही बैठ सकते हैं अतः आप इस पर न बैठिए । साधु ने कहा—साधु के तपोबल और पुण्य प्रभाव से कुछ भी अनिष्ट नहीं होगा । रुक्मिणी ने आने का कारण पूछा तो मुनि ने कहा—भिक्षार्थ आया हूँ, सोलह वर्ष कठिन साधना में मा का दूध भी नहीं पिया । रुक्मिणी ने कहा—जैन शासन में वर्षों तप तो सुना गया है पर यह तो नया ही सुना । साधु ने कहा—अन्य चर्चा त्याग कर आहार देना हो तो दो । रुक्मिणी ने कहा—पुत्र की चिन्ता बराबर सोई ही किसने बनाई है ? मुनि ने कहा—तुम्हें क्या चिन्ता है । उसने कहा—सीनधर

स्वामी के वचनानुसार नारदमुनि ने सोलह वर्ष पश्चात् पुत्र मिलने का कहा था । मैं कुलदेवी को आराधना कर अपना मस्तक छेद करने को प्रस्तुत हुई तो उसने कहा—मरो मत, तुम्हारे आगमन में अकाल में आग्न फलेगा, उसी दिन पुत्र मिलेगा । आज आग्न फल गया तो भी अभी तक पुत्र मिलाप नहीं हुआ । आप साधु लोग सर्वज्ञ पुत्र कहलाते हैं, लग्न देखकर बतलाइये । मुनि ने कहा—खाली हाथ नहीं पूछा जाता । रुक्मिणी ने कहा—आप जो कहें सो दूँ । मुनि ने कहा—खीर खाण्ड दो । रुक्मिणी ने अग्नि प्रज्वलित करने का पूणं प्रत्न किया पर साधु को प्रभाव से अग्नि नहीं जली । रुक्मिणी ने कहा—श्रीकृष्णजी के आरोग्यके के मोदक दे सकती हूँ पर उन्हें हजम करना कठिन है । मुनि ने कहा—मुनि की लब्धि से सब भस्म हो जायेंगे । रुक्मिणी ने थाल भर कर लड्डू दिए जिन्हें मुनि-वेशी कुमार सब खा गया ।

इधर मस्तक मुण्डित सत्यभामा ने बहुत से जाप किए परन्तु दूसरों का बुरा चाहने से अपना ही बुरा होता है । उसने थक कर कहा—मेरी दुर्दशा करने-वाला विप्र कहा गया ? दासी ने कहा—आरे खाजा, लड्डू खाकर भी राक्षस की आँति अतृप्त ब्राह्मण बड़बड़ करता हुआ लाया गया । इसी समय सत्यभामा को इस विभिन्न खबरे आने लगी । किसी ने अन्या अवहूत होने की, किसी ने उद्यान

ध्वस्त करने की तो किसी ने घाम पानी खाने व कुमार के गिरने की बात कही । सत्यभामा के लिए यह जले पर नमक था । उसने चिढ़ कर कहा—“चुप्प रहों । पहले मुझे अपनी तो सुध लेने दो ।

सत्यभामा ने सोचा मेरे में जो हुई तो हुई अब सौत का सिर मुड़ाऊँ तो अच्छा हो । उसने दासी को पड़ला देकर रुक्मिणी के यहाँ केश लाने के लिए भेजा । दैव योग से रात्रि का सा अन्धेरा होगया और दासियों के केश से पड़ला भर गया । दासिया सब भग गई । स्वामिनी की भान्ति दासिया हो गई तो सत्यभामा ने नापित की रुक्मिणी के पास भेजा कि वे जवरदस्ती रुक्मिणी के केश ले आवें । उनकी भी वही दुर्दशा हुई जो सत्यभामा ने कृष्ण-वलभद्र से पुकार की कि आप लोगों की साक्षी से जर्त होने पर भी रुक्मिणी केश नहीं दे रही हैं । श्रीकृष्ण ने कहा—तुमने मुण्डन करा लिया तो सब कुछ हो गया । सत्यभामा ने कहा—मायावीपन छोड़कर अपने वचनों को स्मरण करें । श्रीकृष्ण ने बलभद्र को रुक्मिणी के पास भेजा । उन्होंने जाकर देखा तो वहाँ श्रीकृष्ण स्वयं बैठे मिले । बलभद्रलज्जित होकर लौटे और श्रीकृष्ण को उपालम्भ दिया तो श्रीकृष्ण ने कहा—मैं गया ही नहीं, आप विश्वाम करे ।

नारद मुनि रुक्मिणी के महल में घाये और मुनि से कहा अब अपना रूप प्रकट

1

1

1

1

1

1

1

1

1

1

करो। प्रद्युम्नकुमार अपने प्रकृत रूप में प्रकट होकर माता के चरणों में गिर पड़ा। रुक्मिणी के आनन्द की सीमा नहीं। वह, रोमांचित हो गई। उसका हृदय शीतल हुआ और हृषं के अश्रु गिरने लगे। पुत्र प्रेम के अतिरेक ने उसके स्तनों से दुग्ध की धारा निकलने लगी। प्रद्युम्नकुमार ने कहा—मा, तुम चुप रहना, मैं एक कौतुक करता हूँ। वह रुक्मिणी को रथ में बैठाकर यह कहता हुआ निकला कि—श्रीकृष्ण और सब यादव मेरी यह स्पष्ट घोषणा सुन लें कि मैं रुक्मिणी को ले जा रहा हूँ, किसी की शक्ति हो तो छुड़ालेना। श्रीकृष्ण कुपित होकर सारंग धनुष चढ़ाए हुए आये और प्रद्युम्नकुमार को ललकारने लगे। प्रद्युम्न ने विद्यावल से श्रीकृष्ण की सारी सेना को भगा दिया। श्रीकृष्ण सोचने लगे कि यह क्या रहस्य है। इतने में उनकी दक्षिण भुजा फड़कने लगी। उन्होंने बलभद्र से इसका कारण पूछा। नारदमुनि ने आकर प्रद्युम्नकुमार को पिता के साथ संग्राम करने का निषेध करते हुए श्रीकृष्ण को कहा कि पुत्र से युद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रद्युम्नकुमार पिता के चरणों में गिर पड़ा। सारे यादव-परिवार में आनन्द की लहर दौड़ने लगी। बड़े भारी समारोह के साथ द्वारिका नगरी में प्रवेशोत्सव हुआ।

सर्वत्र नाच-गान और वाजिन्त्र बज रहे थे। मन्त्रके हृदय में अपार हर्ष था। केवल सत्य-भामा का हृदय विषादपूर्ण था। यद्यपि वह तद्भव मोक्षगामिनी आनन्ती शिरोमणी होने पर भी मात्स्यपूर्ण थी। कर्म की गति बड़ी विचित्र है।

रुक्मिणी ने नारदमुनि को नमस्कार करते हुए हार्दिक आभार माना। पितृ-तुल्य विद्याधर कालमवर को मनुष्ट कर्म के स्वस्थान लांटाया। श्रीकृष्ण ने प्रद्युम्न-कुमार एक साथ पचास राज-कन्याओं में पाणिग्रहण कराया और गगनचुम्बी अट्टालिकायें दी। कुमार प्रद्युम्न आनन्द-पूर्वक मामारिक सुख भोगते हुए काल निर्गमन करने लगा।

प्रद्युम्नकुमार की उन्नति देखकर ईर्ष्या में सत्यभामा जल रही थी। वह एक दिन गाल पर हाथ रखकर अश्रुपात करते हुए अनाहार बैठी थी। श्रीकृष्ण ने उसे चिन्ता का कारण पूछा तो उमने कहा मुझे भी रुक्मिणी के जैसा पुत्र दो। श्रीकृष्ण ने उसे आश्वासन देकर हरिणेंग-मेपी देव को अष्टम तप पूर्वक स्मरण किया। देव ने सब कुछ पुण्य से प्राप्त किया है। मुझे किम लिए स्मरण किया है? श्रीकृष्ण ने कहा—सत्यभामा ने हठ पकड़ रखा है कि मेरे भी रुक्मिणी के पुत्र जैसा पुत्र हो। देव ने एक मुक्ताहार देते हुए कहा कि यह हार जिनके कंठ में स्थापित कर मासारिक सुख भागोंगे के उन्नी पुत्र

होगा। प्रद्युम्नकुमार को उसकी विद्या देवी ने यह सूचना दे दी। उसने रुक्मिणी से कहा—तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं हार का प्रपञ्च करूँ। माता ने कहा—बेटा ! मैं एक ही पुत्र रत्न से कृतार्थ हूँ। प्रद्युम्न ने कहा—यदि सत्यभामा के सुपुत्र ही जाएगा तो वह फिर तुम्हें दुःख देगी। अतः तुम जैसा कहो वैसे ही उपाय करूँ। रुक्मिणी ने कहा—जाम्बवती मुझे अत्यन्त प्रिय और सुख-दुःख की साथिन है। कुमार ने उसका रूप साक्षात् सत्यभामा जैसा बना दिया। वह श्रीकृष्ण के पास गई तो उन्होंने उसके गले में हार पहना कर मनोवाञ्छितपूर्ण किया। वह वर्षा-पूर्वक वापस लौटी। और सत्यभामा जब कृष्ण के पास गई तो उन्होंने कहा—पुनः कैसे आगमन हुआ ? स्त्रियों की विषय-तृष्णा असीम होती है। सत्यभामा ने कहा—प्रियतम ! मैं तो आपके पास आयी ही नहीं शपथ-पूर्वक कहती हूँ। श्रीकृष्ण ने कहा—प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या ? फिर भी उन्होंने उसे ऋतुदान से सन्तुष्ट किया। प्रद्युम्नकुमार ने उस समय भेरी वजाई जिससे श्रीकृष्ण कम्पायमान हो गए। उन्होंने सत्यभामा से कहा—तुम्हारे पुत्र तो होगा पर वह भीरु होगा। प्रातः काल जब श्रीकृष्ण रुक्मिणी के यहाँ गये और जाम्बवती को हार धारण किए देखा तो सारी बात का रहस्य खुला और उन्होंने

मन ही मन प्रद्युम्नकुमार के प्रपञ्च को ताड़ लिया। श्रीकृष्ण ने जाम्बवती से कहा—प्रिये ! तुम्हारे गुणवान पुत्रग्न होगा। इसी अवसर पर कौटभ का जीव स्वर्ग से च्यव कर जाम्बवती की कुक्षी में आया। उसने मित्र स्वप्न माम्ब-कुमार को जन्म दिया। वह, चन्द्रकला की भाँति दिन-दिन बढ़ता हुआ प्रद्युम्न-कुमार के सदर्श ही गुण सम्पन्न हुआ। दोनों भ्राताओं में परस्पर बड़ा प्रेम था और दोनों एक साथ क्रीडा करते हुए विचरण करते थे। तरुणावस्था प्राप्त होने पर श्रीकृष्ण ने साव को भी पचास स्त्रियों के साथ पाणिग्रहण कराया। साम्ब प्रद्युम्न दोनों भ्राता, माता-पिता को परमात्मादक थे।

एक बार रुक्मिणी ने अपने भाई राजा रुक्मिणी के पास भोजकटक नगर में दूत भेज कर प्रद्युम्नकुमार के लिये वैदर्भी की माग की। उसने कहालाया कि वैदर्भी स्वर्णमुद्रिका है और प्रद्युम्नकुमार अनमोल रत्न है, आयेँ तुम स्वर्णकार बन कर दोनों को एक कर दो। मेरी यह अभिलाषा है। राजा रुक्मि इस माग ने कुपित होकर कहने लगा—श्रीकृष्ण ग्रहीर कुल का है, हम उत्तम कुल हैं। आगे रुक्मिणी को अपहृत कर लेगा, वह बात भी शल्य की भाँति चम्ब रही है। अपनी पुत्री को चाण्डाल को देना अच्छा पन यादव कुल में नहीं।

दूता द्वारा अपनी बात न मानने का वृत्तान्त ज्ञात कर रुक्मिणी अन्य-मनस्क हो गई। प्रद्युम्नकुमार ने कहा—तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा व मामा को भी कष्ट नहीं दूंगा। तुम निश्चिन्त रहो।

साम्ब और प्रद्युम्न दोनों आकाश मार्ग से भोजकटक नगर पहुँचे। उन्होंने चाण्डाल का रूप करके नगर में घूमना प्रारम्भ किया। वे स्वरीले कण्ठ से गीत गान करते और बीच बीच में वीणा-वशी वजाते थे। उनके अद्भुत रूप और दिव्य संगीत ध्वनि से मुग्ध जनता की बड़ी भीड़ लग जाती इसमें तो आश्चर्य ही क्या, देव विमान तक स्तम्भित हो जाते थे। उनका संगीत नाद विरहणियों को सतापकारी और सयोगिनियों को आनन्ददायक था। कोई स्त्री हार परोती हुई बीच में फँक कर गायन सुनने दौड़ती, कोई पति को परोसती हुई बीच में भागती, कोई पैर में मेंहदी मड़ाती हुई बिना सूखे ही भागती, किसी का धान्य चूहे पर जलता रहता, किसी के घड़े में का घृत ढल कर गिरता जाता, किसी की चुनडी जमीन पर लटकती रहती, किसी की अधगूथी वेणी और खुले केश थे, किसी के आधे वस्त्र पहने हुए थे। इस प्रकार वे राग आलाप करते कि दीपक राग से दीपक जल जाते और पचम राग से वृक्ष नवपल्लवित हो जाते थे।

वैदर्भी ने गर्वियों का बुला कर पिता के पास बैठे हुए संगीत सुना। फिर उन्हें पूछा कि तुम लोग कहाँ से आ रहे हो? उन्होंने कहा—हम स्वर्ग में उतर कर द्वारिका नगरी में से यहाँ आये हैं। वैदर्भी ने कहा—कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्नकुमार को जानते हो? साम्ब ने कहा—ऐसे त्रैलोक्य प्रशसित पुरुषरत्न को कौन नहीं जानता? वैदर्भी मन ही मन प्रद्युम्न-कुमार के प्रति इतनी रागवती हो गई कि उसने अन्य से पाणिग्रहण न करने की प्रतिज्ञा कर ली। इन्हीं समय राजा का हाथी आगमन में छूटकर उपद्रव मचाने लगा। उसके पास जाकर वनवर्ती करने में जब कोई मर्मण न हुआ तो राजा ने उद्घोषणा कराई कि जो हाथी को पकड़ेगा उसे मनोवाञ्छित दिया जाएगा। डोमवेधधारी नाम्ब, प्रद्युम्न ने पटह स्पर्श किया और अपनी संगीत विद्या के बल से हाथी को वश में कर लिया।

राजा ने डोमों से कहा—मनोवाञ्छित माग कर मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करो। उन्होंने कहा—हमारे घर में स्नान करनेवाली नहीं है अतः आपकी पुत्री वैदर्भी को हमें दो। राजा ने इन अयुक्त वाचना से रुष्ट होकर उन दोनों को नगर से बाहर निकाल दिया।

प्रद्युम्नकुमार गति के समय आकाश मार्ग से वैदर्भी के पास गया और रुक्मिणी के

.

नाम से लिखा हुआ पत्र दिया । जिस में लिखा था कि तुम बहु बनकर शीघ्र उसके साथ आना । कुमारी वैदर्भी स्वयं प्रद्युम्नकुमार को आया ज्ञात कर अत्यन्त प्रमुदित हुई । दोनों ने तत्क्षण अग्नि को साक्षी में विधिवत् विवाह कर लिया । कुमार रात भर रह कर प्रातः साम्ब के पास चला गया । वैदर्भी को धाय माता ने आकर नीद से जगाया । उसके ककण व नवीन साड़ी पहिने हुए देखकर विवाहित होजाने की बात से राजा को अवगत कराया । राजाने क्रुद्ध होकर पुत्री को बहुत फटकारा और मन में पश्चाताप किया कि वैदर्भी को डोम को न देकर मैंने वचन भंग किया । उसने तत्काल उन डोमो को बुलाया और उन्हें वैदर्भी को सुपुर्द कर दिया । उन्होंने कहा — तुम राज कन्या हो, सुकुमार हो, कैसे घर का काम करावेंगे इसका हमें दुख है । वैदर्भी ने कहा— मेरे भाग्य की बात, जब पिता हो डोम को देता है तो दोष किसे दिया जाए ।

सब लोगों की साक्षी में दोनों भ्राता वैदर्भी को ले गये । नगर के बाहर देव-विमान सदृश महल की रचना कर उसमें आनन्दपूर्वक रहे । विविध प्रकार के वाजिन्तों द्वारा वस्त्रों के प्रकार के नाटक सगीत में वे आमोद-प्रमोद करने लगे ।

इधर क्षणिक आवेश में आकर वैदर्भी को दे डालने के अविचारपूर्ण कार्य के लिये

राजा को बड़ा पश्चाताप हुआ । वह नाना प्रकार से विलाप कग्ना हुआ महान कष्ट अनुभव करने लगा । अपने प्रधान को भेज कर सुघ नी तो साम्ब-प्रद्युम्न के स्वयं होने के शुभ-सम्वाद से राजा का हृदय अत्यन्त प्रमुदित हुआ । वह स्वयं आकर भानजो में प्रेमपूर्वक मिला । प्रद्युम्नकुमार एवं वैदर्भी को आडम्बर के साथ घर बुलाकर उन्हें बहुत सा दत्त-दायजा दिया और बहुत सी सेना के साथ उन्हें द्वारिका को ओर विदा किया ।

साम्ब व प्रद्युम्न दोनों में भवान्तर की अपार प्रीति थी अतः दोनों भ्राता आनन्दपूर्वक क्रीडा करते हुए काल निर्गमन करने लगे ।

श्री कृष्ण की भविष्यवाणी के अनुसार सत्यभामा का पुत्र भीष्मक वास्तव में ही भीरु था । साम्बकुमार का समयस्क होने से साथ खेलते हुए वह बहुधा मार खाया करता था । श्रीकृष्ण ने जाम्बवती से कहा—तुम्हारे महाबली पुत्र को समझाओ ताकि उपालम्भ न मिले । जाम्बवती ने कहा—मेरा पुत्र साम्ब सीधा और नुकुमार है । श्रीकृष्ण ने कहा—निहत्नी अपने पुत्र का शान्त प्रकृति और नुकुमार बहती है पर वह नाद के द्वारा गजघटा को भवन कर देता है । वैसे ही तुम्हारे मन में साम्ब है । यदि तुम्हें देखना हो तो

10/10/10

10/10/10

10/10/10

10/10/10

10/10/10

चलो मैं तुम्हारे लाल का स्वरूप दिखाऊँ ।

श्रीकृष्ण अहीर बने और जाम्बवती अहीरनी । जाम्बवती दहो बेचने निकली । जहाँ उद्यान में कुमार खेलते थे उधर से निकलते हुए साव ने गाली देते हुए कहा—बनो, ग्वालिन मैं तुम्हारा गारस ले कर तत्काल दाम चुकाता हूँ । वह उसे जवरदस्ती देवकुल में लेजाकर बाह में हाथ डालने लगा । पीछे से श्रीकृष्ण ने कहा—पापिष्ठ मासेही नहीं टलते । साव तत्काल नींदो ग्यारह हो गया । श्रीकृष्ण ने कहा प्रिये ॥ देखलो पुत्र को करतूत । मेरे कहने से नहीं मानो अब तो स्वयं अनुभव कर लिया ।

दूसरे दिन जब कृष्णजी सभा में बैठे हुए थे तो हाथ में कील लेकर साम्ब आया । कृष्णजी ने पूछा यह कील किस लिये लाये ? साम्ब ने कल की बात जो प्रकट करेगा उसके मुह पर मोख लगा गा । श्रीकृष्ण ने कुपित होकर उसे देश निकाला दे दिया । प्रद्युम्नकुमार ने अपनी प्रज्ञप्ति विद्या उसे दे दी जिससे वह आनन्दपूर्वक विचरण करने लगा ।

प्रद्युम्नकुमार अब भोरुक को पँटने लगा । सत्यभामा ने रुष्ट होकर कहा—तुम यहाँ से चले जाओ । प्रद्युम्न ने कहा—माता जी मैं कहाँ जाऊँ ? सत्यभामा ने कहा—जाओ शमशान में जाकर बैठ जाओ । प्रद्युम्न ने कहा—बहुत अच्छा, लौटने की

अवधि बताओ । सत्यभामा ने कहा—जब तुम्हें सावकुमार का हाथ पकड़कर बुलाया जाय तब । यह मुनकर प्रद्युम्नकुमार शमशान में जाकर बैठ गया । सावकुमार भी घूमता हुआ उमने आ मिला । दोनों आत्मा विविध लीलायें करने लगे ।

सत्यभामा ने भोरुक के विवाह के निमित्त ६६ कन्याओं को ढोकर कर लिया था । वह एक और सुन्दर कन्या की शोध में थी जिस से पूरी सौ पुत्र वधुयें हो जाएँ । प्रद्युम्नकुमार ने सत्यभामा को छकाने के लिए यह सुन्दर अवसर जानकर विद्यावल से स्वयं जितशत्रु राजा बना और साम्ब को रूप परिवर्तन कर लावण्यवती कन्या बना दिया और नगर के बाहर सैन्य परिवार के साथ जाकर डेरा डाल दिया । लोगों के मुख से सत्यभामा ने कन्या के रूप की प्रशंसा सुनी तो सौ वी कन्या मिल जाने के हर्ष में वह स्वयं गई । जितशत्रु रूपी प्रद्युम्न से उमने कन्या की याचना की । प्रद्युम्न ने कहा—इसे हाथ पकड़ कर स्वयं ले चलो । और भोरुककुमार पाणिग्रहण के समय इसी के साथ हथलेवा जोड़े (हस्तमैलापन करे) तो मुझे सम्बन्ध स्वीकार है ।

सत्यभामा ने जितशत्रु की बात मान ली और कुमारी को हाथ पकड़ कर अपने घर ले आई । अवधि पूर्ण होने पर जितशत्रु भी साथ आगये । प्रद्युम्न के विद्याधन से सब लोग देख रहे थे कि सत्यभामा

उसे कन्या रूप में ही देख रही थीं। विवाह के सारे विधि विधान सम्पन्न कर जब सौ कन्याओं के साथ भीरुक चौरी में बैठा तो शर्त के अनुसार साम्ब रुपा कन्या का बाया हाथ भीरुक के साथ मिला दिया और दाहिने हाथ से हस्त-मेलापक परम्परा से नित्नाणवें कन्याओं से साव का विवाह हो गया। भीरुक कुमार का विवाह हो गया। सभी कन्यायें अपना विवाह सावकुमार के साथ हुआ देखकर जन्म कृतार्थ मानने लगीं।

विवाह के अनन्तर कन्या पक्ष के सब लोग अपने-अपने स्थान चले गये। साम्बकुमार ६६ सुन्दरियों को लेकर अपने घर आने लगा। भीरुक ने कहा— ये परिणीतायें मेरी हैं। पर सब लोगों ने साम्बकुमार को व्याहते हुए देखा था। अतः उसी का विजय हुई। सत्यभामा ने क्रोध होकर कहा— रे साम्ब। तुझे किसने बुलाया? साम्ब ने कहा— माता जी। आपही ने तो मुझे लाकर पाणिग्रहण करवाया है।

नित्नाणवें सुन्दरियों के साथ साम्ब-कुमार जम्बुवती के घर आया और उसकी सर्वत्र जय जयकार हुई।

इस प्रकार साव प्रद्युम्न की अनेक प्रकार की लीलायें ग्रन्थान्तरो में पाई जाती हैं।

सप्तसिन्धु

तीर्थकर अपने साधुओं के परिवार रहित द्वारिका के नन्दन उद्यान में पधारे। कोटि देव उनकी सेवा में उपस्थित थे। नव स्वर्ण कमलों पर चरण धरते हुए चल रहे थे। उनके आगे महन्त्र योजन ऊचा महेन्द्रध्वज सुशोभित था। देवों ने समवर्णरूप की रचना की। छत्रप्रय, सुरदुदम्भि, चामर, मिहाननादि अष्ट प्रतिहार्य सुशोभित प्रभु के दर्शनार्थ चारों निकाय के देव व मानव मेदिनी उमड़ पड़। वनरालक से चधाई पाकर श्रीकृष्ण अपने अन्तःपुर परिवार रहित प्रभु वन्दनार्थ पधारे। भगवान ने धर्मोपदेश दिया। जिसमें मानव भव दुर्लभता, शरीर की अनित्यता और नमान का स्वरूप बतलाते हुए प्राणियों को धर्माराधन करने की प्रेरणा दी।

श्रावक धर्म, साधु धर्म व नम्यवत्वादि की आत्माभिमुखी व्याख्या श्रवणकर अनेक जीव प्रतिबोध पाये।

गोतम, समुद्रमागर, गम्भीर, तिमिर, अवल, कपिल्लल, अक्षोभ, प्रसेनजित, विष्णु ये दस धारिणी और अन्धक के पुत्र आठ-आठ रानियों को छोड़कर दीक्षित हुए। इन्होंने बारह प्रतिभा, गुणरत्न सबत्तर तप धारण कर ११ अंग पडे व १२ वर्ष की पर्याय पूर्ण कर एक मान की सलेखना से शत्रुजय तीर्थ पर निर्याण प्राप्त हुए।

अक्षोभ, सागर, समुद्र, हिमवन्त, अचल, धारण, पूरण और अभिचन्द्र नामक ८ कुमार यादव वंश विभूषण अधिक व धारिणी के पुत्रों के सोलह वर्ष पर्याय व्रत धारण का उल्लेख अन्तर्गडशाग में है। जालि, मयालि, ज्वयालि, पुरिससेण, वारिषेण जो वसुदेव धारिणी के अगज थे, ५० स्त्रियों को छोड़ कर दीक्षित हुए बारह अंग पढ़कर सोलह वर्ष बाद अन्त कृत के वली हुए। इसी प्रकार समुद्र-विजय, शिवादेवी के नन्दन सत्यनेमि, दृढ़नेमि भी निर्वाण प्राप्त हुए। वैदर्भी की मा, प्रद्युम्न का पिता (कालसवर) अनिरुद्धकुमार भीजालि की भान्ति मोक्ष गये। वसुदेव धारिणी के पुत्र सारण, दुमह, कूवर, दासक और अन्तर्घृष्टि पचास स्त्रियों का त्याग कर प्रवर्जित हुए और बीस वर्ष के दीक्षा पर्याय में चाँदह पर्व अध्ययन कर मोक्ष गये। सारण की भान्ति धारिणी-वलभद्र के पुत्र सुमुख-कुमार भी निर्वाण पद पाये।

श्रीकृष्ण—ढङ्गा के पुत्र ढणमुनि ने अबेदक्ष से अलाभ परापह का ज्ञात कर कर्मक्षय किये और भगवान नेमिनाथ द्वारा प्रशिक्षित हुए। अनिकयशादि देवको के छ पुत्र जो मद्दिलपुर में सुलसानाग के यहाँ बड़े हुए थे, लघु वय में प्रभु के पास दीक्षा हाँ भवतमुद्र का पार पाया। देवका के लघु पुत्र गजसुकुमारमुनि उसा दिन दाक्षा लेकर श्मशान में

कायोत्सर्ग रहे और सोमिल स्वप्नुर द्वारा मस्तक पर अग्नि प्रज्वलित किये जाने पर अन्त कृत के वली हुए। गजिमती द्वारा अकुश प्राप्त रथनेमि जो भगवान के भ्राता थे, मेरु की तरह निश्चल मन करके निर्वाण प्राप्त हुए।

उग्रसेन राजा की पुत्री राजिमती ने भगवान नेमिनाथ की अष्ट भवों की प्राप्ति सफल कर उन्हीं के कर कमलों से प्रवर्जित होकर भगवान में पहले मोक्ष गाम। हुई।

भगवान नेमिनाथ से श्रीकृष्णजी ने पूछा भगवन्। यह देव निमित्त द्वारिकानगरी शास्वत रहेंगे या नहीं? प्रभु ने कहा द्वीपायन ऋषि इसे जलाकर भस्म कर देगा और इसका निमित्त कारण 'मदिरापान' का व्यसन होगा। कृष्णजी ने भयभीत होकर कहा—प्रभो। मुझे दीक्षित कर इस सकट में बचाइये। भगवान ने कहा—ममा वसुदेव नियाणवद्ध होंने के कारण दीक्षा नहीं ले सकते, तुम श्रद्धा सम्यक्त्व पालन करो। तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने द्वारिका में ३ बार उद्घोषणा करवा दी कि द्वारिकानगरी का विनाश अवश्य भावों है। अतः जिन्हें दीक्षा लेनी हो, माता, पिता, पुत्र, भगिनी, पुत्र, आदि सभी परिवार भगवान नेमिनाथ के पान जाकर दीक्षित होजाये। मेरा यह आदेश है। मैं उनकी दीक्षा का उत्पन्न करूँगा व पाँछे घर का निर्वाह भी करूँगा।

420

200

2

100

3

[Illegible handwritten text]

[illegible]

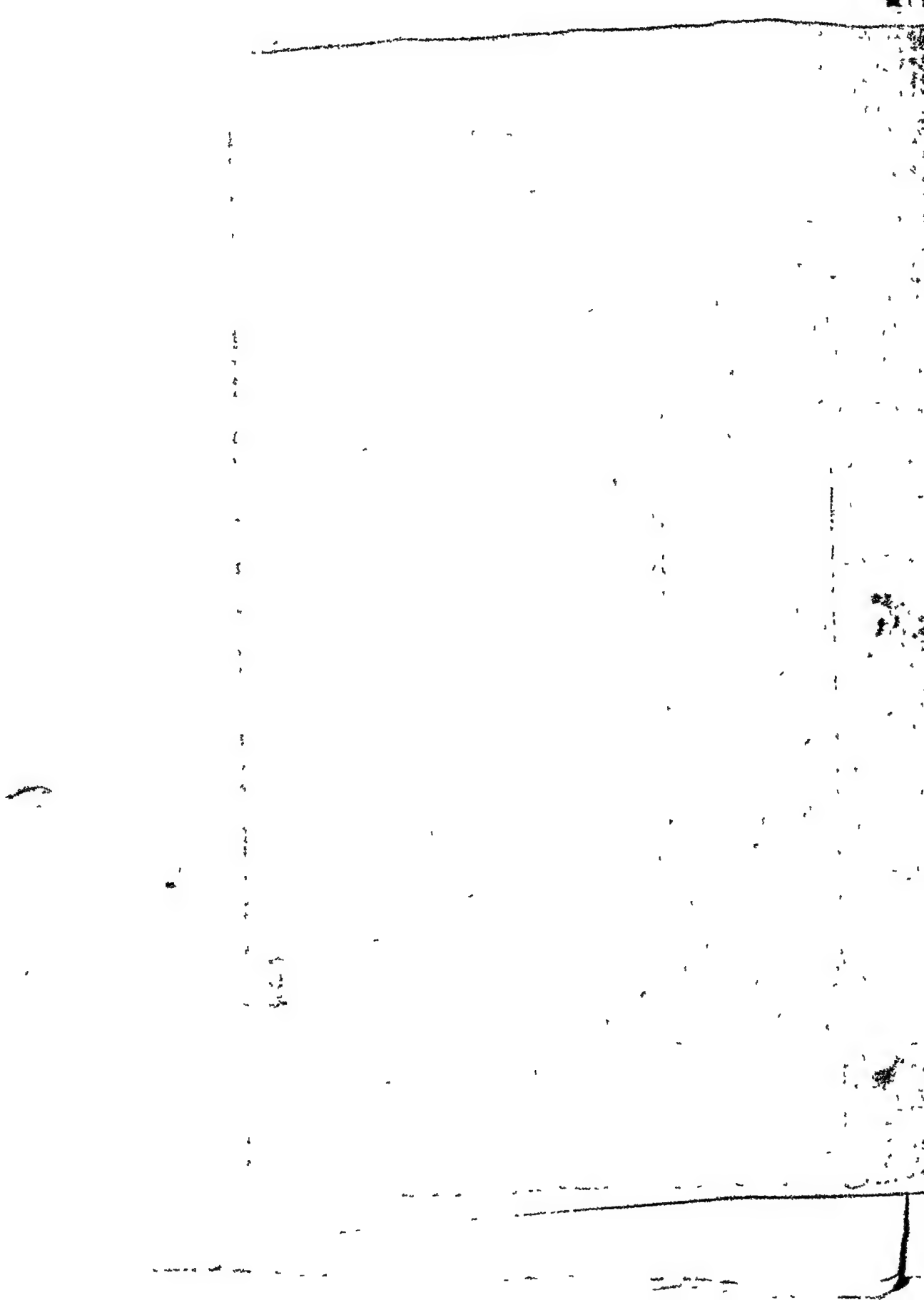
श्रीकृष्णजी की इस उद्घोषणा को सुन
र राती पद्मावती, गौरी, गान्धारी,
म्बुदती, रुक्मिणी, सत्यभामा, लक्ष्मणा,
सुसोमा, नामक उनकी आठो अग्र महिषियों
। दीक्षा ले ली । वे ग्यारह अर्गों का
अध्ययन कर बीस वर्ष के दीक्षा पर्याय का
पालन कर एक मास को सलेखना से
निर्वाण प्राप्त हुई । मूत्रश्रो, मूलदत्ता
नामक सावकुमार की दी स्त्रिया व
पद्मावती भी नेमिनाथ प्रभु के पास
दीक्षित हो गईं । इस प्रकार अनेक
प्राणी ससार समुद्र से पारगामी हुए ।

जगद्गुरु श्री नेमिनाथ प्रभु की वाणी से
वैराग्य वासित होकर साव व प्रद्युम्न कुमार
ने उनसे दीक्षा देकर भव समुद्र से तारने की
प्रार्थना की फिर माता-पिता से आदेश
लेकर दीक्षित हो गये । वे निर्मल बुद्धि

वाले और व्युत्पन्न तो थे ही । अल्प समय
में शास्त्राभ्यास कर लिये । पाच समिति
तीन गुप्ति को चारुतया पालन करते हुए
२२ परिषद् सहन करते थे । उष्णकाल में
तप्तशिला पर आतापना लेते व शीतकाल की
रात्रि में कायोत्तर्ग कय शातपरिषद् सहते ।
कठिन तपश्चर्या के साथ द्वादश प्रतिमा
वहन कर गुणरत्नादि तप किये ।
आहार के ४२ दाष टालते । श्वास, श्वास
की क्रिया के अतिरिक्त सभी कुछ रुदगुरु
के अधीन था । वे साव, प्रद्युम्न मुनि
क्षमासमुद्र, बहुश्रुत और जितेन्द्रिय होने
के साथ-साथ अप्रमत्त दशा में विचरते
थे । सोलह वर्ष पर्यन्त निरतिचार समय
साधना करके विमलगिरि श्रृंग पर
निर्माणपद प्राप्त हुए ।



सप्त सन्धु/जन साहित्य आप की अपनी पत्रिकाएं है
आप से नम्र निवेदन है कि अपने से सम्बद्ध विद्यालय,
पुस्तकालय या संस्था को ग्राहक बनाने में सहयोग दें ।
इस सहयोग से पत्रिका को बड़ा बल मिलेगा ।



अपने अन्वेषण के कार्य के सिलसिले में जब मैं पूना स्थित 'मण्डाकर एन्टिक्विटान् गिस्च' इन्स्टीट्यूट' के पुस्तकालय में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज कर रहा था तो मुझे हरियाणा प्रदेश के लाठीहू गांव के कवि बल्ह द्वारा रचित एक काव्य ग्रंथ 'कूबड़ा मंजारी चउपई' मिला। कवि बल्ह पाल के पुत्र थे ऐसा संकेत उक्त रचना के १७-वें छन्द के "पाल पूत बल्ह" शब्दों में मिलता है। इसके अतिरिक्त कवि के बारे में हमें और किसी भी प्रकार की जानकारी प्राप्त नहीं होती।

६ पत्रों की यह प्रति मवत् १६६२ आश्विन शुक्ला चतुर्थी, शुक्रवार, को नागपुर याने नागौर में सम्राट अकबर के राज्य में लिखी गई—“सम्वत् १६६२ वर्षे आश्विनि मासे शुक्ल पक्षे चतुर्थ्यां तिथि शुक्रवार श्री नागपुर मध्ये लिखत ॥ पातिमाह श्री अकबर राज्ये ॥ श्री ॥” लिपि जैन शैली की है। सम्भवतः यह प्रति राजस्थान से ही मण्डाकर एन्टिक्विटान् में पहुँची है। यद्यपि इस रचना में निर्माण काल का उल्लेख नहीं है पर मवत् १६६२ में लिखित होने में इसमें पूर्व की रचना है यह तो निश्चित है ही। परन्तु हमारी भाषा शैली को देखते हुए मुझे यह १६ वीं शताब्दी की रचना लगती है। हरियाणा प्रदेश राजस्थान से भी मिला-जुला है इसी लिए इस रचना की भाषा हिन्दी होने पर भी राजस्थानी से प्रभावित है। वास्तव में उस समय राजस्थानी और हिन्दी में इतना अन्तर नहीं होना था। १६ वीं शताब्दी की हरियाणा प्रदेश की भाषा का इन रचना से भली-भाँति परिचय मिल जाता है।

इस रचना का विषय भी बड़ा विविध है। बल्ह कवि ने विनोद के लिए ही इसकी रचना की है। प्रारम्भ में गणपति, फिर मरस्वती-शारदा और अपने माता-पिता को नमस्कार किया है। पहले और अन्तिम पद्य में कवि ने अपना नाम भी दे दिया है। बीच में भी एक-दो जगह उसने अपना नाम दिया है। अन्तिम पद्य में पिता के नाम और अपने निवास स्थान का भी उल्लेख किया है :—

प्रथम कि प्रणमउ गणपति देव, काज सिद्धि जिउफुगद निषेध।

गवरि शकर मल उत्तपति जास, कहइ बल्ह पडित कउ दरम ॥१॥

हरियाणउ लाठीहू गाउ, पालपूत बल्हा इपु नाउ ॥१७७॥

मजरी तणी सो करति करइ, जिणि छेदी लीयउ तणि ही उतरइ ॥१७८॥

प्रस्तुत रचना १७८ पद्यों में है। प्रधानतया चौपाई छन्द में रचे जाने के कारण ही इसका नाम "कूबड़ा मंजारी चउपई" रखा गया है। वैसे बीच में कुछ दोहे और वस्तु-छंद भी हैं। संस्कृत का भी एक श्लोक पाया जाता है। मंगलाचरण के तीन श्लोकों के बाद कथा प्रारम्भ होती है और जैसा कि रचना के नाम से स्पष्ट है, इसमें एक कुबड़ा और बिल्ली की कहानी है। कवि ने इसमें 'कहानी' शब्द का प्रयोग भी दो-तीन जगह दिया है जो वास्तव में बहुत ही महत्वपूर्ण है। क्योंकि प्राचीन रचनाओं में 'कहानी' शब्द का

... के लिए जानने ... के विद्यार्थी के लिए जानने ...
... के प्रकार मिता है :—

... १०६ ।

... १०५ ।

... भी इस रचना में दी गई है ।

... —

... और चौदह ...
... पालने ...
... (मुना) में चार एक बिल्ली मोन ले आया । उसी पाल-
... में घूमने-फिरने जाने लगी । ब्राह्मण ने सोचा कि मैंने
... नहीं हो पाता । इसलिए उसने
... दी और ताला लगा दिया । अब तो वह बड़े सकट
... और भूयो मरने की नीवत आ गई ।
... जिसे तब तक में पाप लिए जिसके कारण मेरी यह गति-स्थिति हुई ।

... में ब्रंठा हुआ एक कूड़ा देखने में आया ।
... भगवान ने कहा बैठे ही कैसा सुन्दर भाजन भेज दिया । पर
... होने में उसने अन्य उपाय सोचा और कूड़े से
... विवाह हो जाय, दोनों
... मुन्दर गिराई है । गलनायक-गणेश अपने पर तुष्टमान हुआ है
... और मेरा विवाह हो जाय :—

... गण-णाहु ।

... ॥१६॥

... स्वीकार
... विपत्तिया भोगनी पड़नी है, स्त्रियों का
... विवाह हो जाय, दोनों
... पक्ष का

... कवि ने कूड़ा
... से दिये हैं और उसी
... प्रयोग प्रसंग
... —

... ॥४०॥

... ॥४१॥

... का उल्लेख है ।
... का उल्लेख है ।
... का उल्लेख है ।
... का उल्लेख है ।
... का उल्लेख है ।

चलती है। पद्यांक ८२ में द्रोपदी विवाह और राधा वन का प्रसंग वर्णित है। मुनिष्ठित, सहदेव, भीम, दुर्योधन, वीचक, दुर्वासन आदि का उत्तेज भी द्रोपदी के जीवन प्रसंग में किया गया -। फिर त्रिया चरित्र का प्रसंग भी वर्णित है। मोहनी, मदन मुन्दरी, रम्मा, शशि सोमरा, जोजण गधा, रावण नीता, कन्हड योगिनी, के दृष्टान्त माजारि वृष्ट के छनने के प्रसंग में दिये गये हैं। पद्यांक १८८ के बाद भगजापुरी पाटन की एक अन्तर्दा दी गई है। इस तरह कवि ने विषय का निरूपण अनेक दृष्टांत कथाओं से देकर बड़े सुन्दर रूप में किया है।

उस समय हरियाणो में कौन-कौन से कथा प्रसंग विदोष प्रसिद्ध रहे हैं, उसकी सूचना इस रचना में बहुत ही महत्व की मिल जाती है। कुछ पौगणिक और प्रसिद्ध कथाओं की जानकारी तो सबको प्राप्त है पर चंदन नगर के धनदत्त और भगडापुरी प्रादि की कथाएँ अब अज्ञात-भी हो गई हैं। सम्भव है हरियाणा प्रदेश में लोक कथाओं के रूप में वे आज भी कही जाती हो या बड़े-बूढ़े लोगों को उनकी जानकारी हो।

कूड़े और विल्ली के सवाद में कवि ने बहुत-सी रोचक बातें कही हैं। जैसे विल्ला कूकड़े को कह रही है कि स्त्रीविहीन पुरुष की शोभा नहीं, उन्हें तो योग धगडा कह कर बुलाते हैं।

रेह कूकडा मजारि दहड, देखउ मनन मद जोई।

त्रिया विहूणा जे फिरड, धगडा कहिये सोई ॥६१॥

विल्ली अपना पक्ष समर्थन करते हुए कूकड़े से कह रही है कि चांगनी चाण जीवायोणि में स्त्री और पुरुष की जोड़ी के बिना कोई नहीं दिखाई देना अब अग्न तुम्हारी और मेरी जोड़ी मिल जाय तो अच्छा हो। कूकडा उत्तर में कहता है कि स्त्री का कोई भरोसा नहीं। और फिर दृष्टान्त देकर वह अपनी बात की पुष्टि करता है।

उस समय जन-साधारण में कौन-कौन सी विद्या या शिल्प प्रचलित थी, इसकी भी सूचना इस रचना में मिल जाती है। चाणक्य नीति का उस समय सूत्र प्रचार था। तिथि-मुहूर्त का ज्ञान भी आवश्यक था। मन्त्र-तन्त्र, वनीकरण आदि विद्याएँ भी लोग सीखते थे। त्रिया चरित्र का भी ज्ञान आवश्यक माना जाता था और बड़ा कहानी तो लोगों को बहुत प्रिय थी ही।

तइ चाणाइरु पडे अमेन, तिथि महूता जाणहि अनेन।

हन मेखला वनीकरणु, तनु-मनु तियाचरितु जाणाहि ॥६२॥

ब्राह्मण, स्त्री और गौ की हत्या का पाप बहुत अधिक माना जाता था। इन प्रकार अन्य लोक विश्वास और नीति सम्बन्धी अनेक बातों का भी इस रचना में उल्लेख हुआ है।

इस काव्य की भाषा ४००-५०० वर्ष पुरानी होने से कड़ी-कड़ी उसे समझने में कठिनाई होती है और एक ही प्रति मिलने में पाठ में भी कुछ गलतियों से ग्रस्त है। दो-एक स्थानों में तो पाठ कुछ घुटित भी हो गया है। फिर भी यह रचना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसकी कहानी बहुत रोचक है। हरियाणो प्रदेश की एक ऐसी प्राचीन भाषा रचना अब तक सुगंधित रह गई है वह एक जैन विद्वान की ही कृपा से, जिसने इसकी प्रति लिखी है।

॥१॥ ॥२॥ ॥३॥ ॥४॥ ॥५॥ ॥६॥ ॥७॥ ॥८॥ ॥९॥ ॥१०॥ ॥११॥ ॥१२॥ ॥१३॥ ॥१४॥ ॥१५॥ ॥१६॥ ॥१७॥ ॥१८॥ ॥१९॥ ॥२०॥ ॥२१॥ ॥२२॥ ॥२३॥ ॥२४॥ ॥२५॥ ॥२६॥ ॥२७॥ ॥२८॥ ॥२९॥ ॥३०॥ ॥३१॥ ॥३२॥ ॥३३॥ ॥३४॥ ॥३५॥ ॥३६॥ ॥३७॥ ॥३८॥ ॥३९॥ ॥४०॥ ॥४१॥ ॥४२॥ ॥४३॥ ॥४४॥ ॥४५॥ ॥४६॥ ॥४७॥ ॥४८॥ ॥४९॥ ॥५०॥ ॥५१॥ ॥५२॥ ॥५३॥ ॥५४॥ ॥५५॥ ॥५६॥ ॥५७॥ ॥५८॥ ॥५९॥ ॥६०॥ ॥६१॥ ॥६२॥ ॥६३॥ ॥६४॥ ॥६५॥ ॥६६॥ ॥६७॥ ॥६८॥ ॥६९॥ ॥७०॥ ॥७१॥ ॥७२॥ ॥७३॥ ॥७४॥ ॥७५॥ ॥७६॥ ॥७७॥ ॥७८॥ ॥७९॥ ॥८०॥ ॥८१॥ ॥८२॥ ॥८३॥ ॥८४॥ ॥८५॥ ॥८६॥ ॥८७॥ ॥८८॥ ॥८९॥ ॥९०॥ ॥९१॥ ॥९२॥ ॥९३॥ ॥९४॥ ॥९५॥ ॥९६॥ ॥९७॥ ॥९८॥ ॥९९॥ ॥१००॥

भणइ विलाई जा दिन जाइ, मस्तकि पडियो लेख ।
 जनमि जनमि तेरा तिल चाव्या, हियइ समनि देखि ॥१८॥
 दहु जोडी विहि सनोई, तूठउ छइ गण-गणहु ।
 उनरि आवउ रार कूकडी, मुभ तुभ करउ विवाहु ॥१९॥

॥वस्तु॥ भणइ कुर्कुट निसुणि मजारि,

तिया हुइहि ज लपटि, एक खाहि अवर मुहि लावाहि ।
 नैन सवारहि अन्न कहु, अन्न खाहि ते पान मगाहि ।
 अठहिया नव कालिजा दस मन वारह चित्त ।
 ककुड जपड ते मुआ, जेपर महिला रत्त ॥२१॥

मजारी: भणइ मजारी निसुणि कूकुडा, तिया वाजि मति वडा बिजजड ।
 घरि आया आपणइ, उठि महत आदरह दिजजड ॥२२॥
 मगिण जाहि वसीठ वहि जाइ उत्तासइ पाउ ।
 मूढ तिलपिमी परहरइ, ते पाछइ पछनाहि ॥२३॥

॥चौपाई॥ असमजरिविस वेसभु भुयगम, नर जे चाड किराउ तुरगम ।
 सहिए जार जुवार जमाई, ए आपणा न हुति दियाई ॥२४॥
 कइ हत्या दिउ कइ सलुरवि मरउ, तुभहि छोडि न अवगहि वरउ ।
 अवर पुरुष मेहरइ भाई वाप, मड तुभ कारणि गाल्यउ आप ॥२५॥
 खिणही लाभइ भाउ कुभाउ, उत्तरि आउ देइ पय आउ ।
 कूकडउ हउजादि को जायउ हउ जाणणि, तदि कउ पाउ न दीयउ घग्गि ।
 आलइ ठयउ हू तप करउ, आलउ छोडि न भइ ऊनरउ ॥२६॥
 रइ कूकडा मजारी कहइ, तिया विना कवण सुख लहइ ।
 देखि विनिसिजइहु ससार, मूरख काइ हुहि गवार ॥२७॥
 हे मजारि न बोलहु आलि, हियो आपणो देखि मभालि ।
 जे परवति स्या आवहि भाइ, देवलि कीचकु देखो जाइ ॥२८॥
 मजारि कहइ कूकडा सुणइ, भूठो साचउ कायो भणइ ।
 हम तुम्ह हुवो पूर्वलो नेह, भानउ जीव तणउ सदेह ॥२९॥

॥श्लोक॥ न विश्वसे काले शूद्रे कृष्णो चैव ब्राह्मणे ।

न विश्वसे कपिल वर्णस्य, स्त्री चरित्र न विश्वसेन् ॥३०॥

॥दोहा॥ वयर विरोध करउ तुभ सेती, मेरउ कह्यउ नभ अपि ।

पुरुष देखि हउ अवसरि आई, जे करि लागइ हाथि ॥३१॥

तीनि सइ इकसठि की तीरथ कीसइ अर पूजइ हर देव ।

मुभ सी घर गेहणि न लहहि, जे हदइ त्रिय लोड ॥३२॥

काजु तासु तिय सउ कीजइ जिस सीता मन मेलु ।

अण सगाई सग किउ कीजइ लोटउ गण ति जेनु ॥३३॥

मूसा कूकडा अवर विलाइ, पूरव बइर प्रवाह ।

अलियउ बोलइ लपट मोस्यउ, हम तुम्ह किस्पो विवाह ॥३४॥

जाति किसी जेमह तुही मानइ, तू जाणइ सह भेड ।

पडिया पडि भी मन डोलहि छानहि बरहि ननेहु ॥३५॥

मन्त्रः = मन्त्रः, ज्येष्ठादि रि देव ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ १॥

५-०-१९८७ नमः शिवाय नमो नमो नमो ।

१५- सुनि मज्झि मज्झ, मीम नदग नमि होइ ॥२७॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ श्री गुरु नमः ॥ श्री गुरु नमः ॥ श्री गुरु नमः ॥ श्री गुरु नमः ॥ श्री गुरु नमः ॥

ॐ श्री गणेशाय नमः । श्री गणेशाय नमः । श्री गणेशाय नमः ।

श्रेष्ठ गाम्भिर्य न चरही, जीता माहि कुरग ॥३६॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ अजि दिनि पर मजोइ करतारि ।

--- तस्य सान्ध्या दीपः, त्यज कृत्वा मजारि ॥४०॥

॥ १००० ॥ सम गेट = खुदा पाये, कोभाराण न जाड ।

तूनी दुनी ७८ मोना तूनी, पेटि न मार तिणि जाइ ॥४१॥

गोरी गोरी ने पट्टियों पट्टिन, कपड़ करि मोइ जाइ साथी ।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ४२ ॥

२७० गेव रग्गु तुम् आगणि, मूरिख मुक्क पतियाइ ।

३। मग्गल, मेरु दीजड, जे भाव से खाइ ॥४३॥

गोम श्याम नर हि वैदि मजरि अजुडि जांडा हि ।

मार्त मन्ति नमुद्ग घरि कग्नि मभी त्रिकावहि हावि ॥४३॥

चित्ताभ्यां निमग्नं विद्याना, भावः जाणि म जाणि ।

चुगे भनो हउ जज्जो दीठउ, तिमउ कीजइ वखागु ॥४४॥

१० मन्त्रि तू तावच तारड भूठ करहि व्योहाह ।

नरणि नाहि ने इदी दमागड विपमा झु संनाह ॥४५॥

નૃ નિગિમિ યત મજની આદિ પાઉં ન ઠેલિ ।

ਸਾਹ ਸਾਹਿਬਾਨੁ ਬਾਨਿਸੀ ਨਾ ਨੁਖ ਵਡਤ ਨ ਵੇਲਿ ॥੪੬॥

प्रगुस्ता रिम र्गनि योया ताइ पछोडहि जिसकण इकु न होइ ।

ॐ मज्झि नाना ममी तां न पनीजउ तोहि ॥४७॥

न गिताहि देह न गिताहि जेठ, नमिगाहि हूम बाडव नव मेठ ।

अग्नि पति कोटा देवहि गोक, जाड पडइ जिउ जल महि जोक ॥४८॥

३. इत्यादि न आवण तहनि, अइमी वान तू मोभ न लहइ ।

निमुसगति नष्टं वा ममाह, तद्वत् तूष्णीं बहिष्यद् व्योहारः ॥४६॥

॥३॥ सावित्राय नमः । नमः । तन्मया मयालिहि हंतत ।

तानगणि येमागियारी स्वर्ग मृदु पायाल घर तिस रूप न पूजत अवर ।

नादिन पाग्न भानियः पृथिरुयो पगपाण,

गुह्यकण्ठ गणपत, गदा बड अपाण ॥५०॥

१. गौतमी। नमनि उज्ज्वो तिदि विमग्गड, तिमृवर कामणी उपर चाड ।

पाट मग हे पागे पगे, गवग भूलि गही सुदगी ॥५१॥

मिदं वदन्त इन्द्रः प्रथितान्, मिदं पठितं मरि नृनहि गवाह ।

ॐ इति गङ्गा गङ्गा तानु एषहि तानि ये तानि निभाय ॥५२॥

शिव वरन गहः पूजः नैव, मागिज किटक नह कड मेलि ।

कपूर कपेस अरु खर तुपाऊ, एकाहि तोलि न तोलि गवारु ॥५३॥
 भोज राज निमसतउ घरालु, दिपक मुज बलालु ।
 निस घर गेहणि प्यारी सदा, अरघ राति फाडइ नवा ॥५४॥
 तिय लगु मदिदि धियउ बालि, तिय लगु भीउ पड्यउ वग दालि
 ती लगु रावगु लका मरइ, किउ कुकडा भरोसा करइ ॥५५॥
 पुहिमी अपार नीर घर पडइ, तउ कुकड वग पावस चडइ ।
 वारि मास देव गली पोम, तन्ह सु ददि किउ दीजइ दोम ॥५६॥
 तेरउ कह्यउ सुणिहि ऊनरउ, जाणउ विष खावही मउ ।
 इति जुगि जे लोडहि वर नारि, सहि विगुता इह ससारि ॥५७॥
 हे आप अरथि तु भखहि घणउ, मन न दुलाउ आपणउ ।
 देखत आप न सकउ खवाइ, अवरह मूरख जाइ समझाइ ॥५८॥

मजारी प्रिख मूक भावइ नही, पडिन लहउ न कोइ ।
 आघउ पाछउ सोचि करी, दीठउ चित्त अरु अवलोइ ॥५९॥
 मजरि मनि मेलइ रहइ, जिय न फइ सतोप ।
 निकुला हुहि सु तुहि मिलइ, कुल का लागइ व दोष ॥६०॥
 रे कुकडा मजारि कहइ, देखउ मनन मइ जोइ ।
 त्रिया विहूणा जे फिरइ, धगडा कहियइ सोइ ॥६१॥

कुकंट : मंजरि इदा वनि ऊरउ, जीउ न देयु कलाइ ।
 जउ हउ अति स्याणा खरा, तउ सीतू मुक खाइ ॥६२॥
 ॥चौपाई॥ नर नरवइ सभ जाणइ लोइ, पडित विना न ब्रम्ह कोई ।
 लखि चउरासी जीवइ होइ, जोडी विना न दीसइ कोई ॥६३॥
 अवर पुरष मेरइ भाई बापु, मइ तुम्ह कारण गाल्यउ आपु ।
 खीणहु लाभइ भाउ कुभाउ, उत्तरि रया आउ देह पखवाउ ॥६४॥
 मइ चाणाइक पढे असेस, तिथि महरत जाणउ परदेम ।
 अवरइ जाणनु हल मेखला, वसीकरण वोर परि भला ॥६५॥
 घघाली कूटणि जूआर, जाणउ सवहा की सार ।
 जे परणी रवहि गहि लार, वहि साचिला गवार ॥६६॥

॥वस्तु॥ कवण सायर कवण सायर तिरइ दहु बाह ।
 को सरपाह मणि हडइ, नाट जात कोसि घरोडइ ।
 कवण हुतासण पइसरइ, गरुड पंखि कहि कवण मोडइ ।
 कोउ पाउ करवत ले मेइ बोल्यो इण चार ।
 सउ हथि आपण गोरी की किम परि पइ अगार ॥६७॥

॥वस्तु॥ रोस मरती ल्यउ गलि पासु तुअ कारणि कूवइ पडउ ।
 छुरी लेइ अपणह घाउ ।
 इतु जनमि अवइ जममि तू मरिखउ घर न पाउ ।
 कुकुड तुम्ह उपरि मरउ पेट कटारी घाइ ।
 कदे न हुइ दी अपणउ दीठउ तो किं जाइ ।
 हारि जुवइ पडव बल्या रह्या वन पडि जाइ ॥६८॥

सुतीय दिठी काई मोणी, आभरण लीये उत्तारि ।
 जुवइ खेलण जोग वाल्यउ, कुवइ दे वग नारि ॥८६॥
 नीर कारण दुइ घटाउ, कुवइ भाखइ आइ ।
 जीवति दीठी काढि वइगी, घग्गि दी मुकनाइ ॥८६॥
 बाट जाता रोर मूठी, छिन्नी कपडा लिये ।
 तिइ करिउ नगगी छाडि दीन्ही वधि उस ले गये ॥८७॥
 इहु नयर चदण जाइ पहुतउ, मिउ जुवार्या अड्यो ।
 मास छहा द्रवु हार्यउ कूड केरि मो वाहुड्यउ ॥८८॥
 जाइ वाहुडि सासुरइ जीवति दिठी नारि ।
 जाणि तरवर जड विहणउ पड्यउ घरणि मभारि ॥८९॥
 छुरी मारी कुपइ दीन्ही भेद किसइ न कह्यो ।
 पुरुष नारि देखि अगुण इतउ अतर रह्यउ ॥९०॥
 सुणि मजरि प्रभणइ । न्नेउना थास्यउ नारायण देवो, पढव जाइ रह्या वन सुट ।
 कौरउ घर भू चहि बलि वड ॥९१॥
 राजा द्रोपद धी द्रोपती, वेधइ राहु सु व्याह्यहु सती ।
 सुणि कपरउ दल मिल्यो असख, देव नारायण पूर्यउ सख ॥९२॥
 वाजत सख जुघिस्टर सुण्यउ, सहदेवी वीरहकारउ सुण्यउ ।
 गिणि जोसी कित कराहि विचारि, किसी सयनायाह कहो स्यारि ॥९३॥
 खडी उलालइ जोइसु गिणइ, मिल्यउ दल ग्यान्ह खोहणइ ।
 दोवइ कारण खडे खधार, करइ अनन तुम्हारी सार ॥९४॥
 सूतउ छोड्यो लि भीम कवार, आगइ ते न सहहि पइसार ।
 तउ बोलइ जुघिस्ट्यर राउ, सहेद भीवसेणि ले आउ ॥९५॥
 गयो जोइसी न लागउखेउ, भोज भोज करइ सहदेउ ।
 सुणइ भोज जाग्यउ पडार, जाण्यउ कयरउ तणउ सधा कालु (र) ॥९६॥
 सुणवि भीम वालइ नित, कहइ त कयरउ करउ सधार ।
 घोडा मेती घोडउ हणउ, गयवर सेती गयवर मणुउ ॥९७॥
 वाचह हाथि घरइ जिउ सीसी साल्यउ, आप गलि जिउ घालउ ।
 पीति भीउज कीया रला पेलि, पीड का पडी केदारह ठेलि ॥९८॥
 दुरजोधन पूछइ रतखिणा, हमको पडी के दाह तणा ।
 तेल तणी अघटइ कडाहि कान्हड घण हर घाल्यउ वात्हिहि ॥९९॥
 राधा-वेध कर नर जोई, या द्रोपदी विवाहइ पोइ ।
 पहिलउ घणहर लियउ कालि, गिह्यो प्राण नारायण आगि ॥१००॥
 चाढ्यउ धनुष धराणि गालि गयउ तव दोवइ दूसासणि लयउ ।
 दूसासण तहु सवयउ चाडाइ, तीजइ सल्लु पहुतउ आइ ॥१०१॥
 सल्ल पासि जब वापरिद रह्यउ, कोप्यउ कन्ह धनुष करि लयउ ।
 रय नदन जब धर्यउ उदाणि कूड रच्यो रघु सारग प्राणि ॥१०२॥
 चड्य पउनाहि तव खिणु अड्यो, कन्ह बुलायो तव कापड्यो ॥
 तब कापडी लियउ सारणु, नव खड प्रथमी जोवइ मगु ॥१०३॥

..... ૧

નનુ મુન - નિ પચિયડ ફાલિ, મનુદર ટપકિ ચડઃધ્વતપાચિ ॥૧૦૪॥

તનુન - મનુદર લે તરિ તુનુ, મનિ મુમર્યડ તિન ચોખા કુણુ ।

નનુ - નિનિનિ વેલી મૂઠિ, વેલ્યડ ગાહુ ભવતી પૂઠિ ॥૧૦૫॥

મુનુન નનુ - નનુ નવ હવડ, ઘડઠી ઇમહિ મડલિ ગયડ ।

નનુ - નનુ નિનિ ઘાલી માત, વિલસ વડન હૂયા ખોઆલ ॥૧૦૬॥

નનુ - નનુ નનુ નનુ ઘરડ, ટોલડ વળી ફેગ ફિગડ ।

નનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, ગાહિ કુમાળ નચ્યડ ચાલ ॥૧૦૭॥

નોનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, ટોલડ કઠરડ દલ સગહડ ।

નોનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, નિડ કુરડડ મનોસો વર્યો ॥૧૦૮॥

નનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, પ્રથમી હૂતિ રાવ જર જાતિ ।

નોનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, માસુ પિટુ નિહા બાલકુ મયો ॥૧૦૯॥

નનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, વિન છુ િ ૨ ।

માનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, વ્યાહ સંજોવડ નરવડ કહડ ॥૧૧૦॥

નનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, રાડ રાડગ લે વ્યાહન ગયડ ।

..... નીચ આળી મુનામડ, માસુ પિટુ નિહાનયડ ગ્રાહ ॥૧૧૧॥

માસુ મુનુ નનુ નનુ નનુ, માસ પિડ હમ તળડ મરતાર ।

વિડ વુનાડ માસુ મિરિ ઘરગડ, સઠિ તોનિ વમડ તોરથ કર્યો ॥૧૧૨॥

માસુ કુરડડ નર મજારિ, ત્રિયા ચારિતુ વહુ મગિહિમા ।

નોનુ મુનિ વડ રાનન મહાડ, વલ્હુ નડપડ મજારિ નાડ ॥૧૧૩॥

ગળા મડ ગોડાવરિ જાડ, મુંઘ પિડારડ પહુતી ગ્રાહ ।

નનુ - નનુ નનુ નનુ નનુ, આધાલ્યડ મુસિ રાસિ સૂનીકલડ ॥૧૧૪॥

માસુ પિડ નનુ નનુ નનુ, રાહ ઘોડ વિચાલ્યડ પડડ ।

નોનુ નીચો જર નાહિ તુરનુ, લગડ માર માર પ્રમળનુ ॥૧૧૫॥

કહ્યો રાનના ચિકરાનુ, આનામુલ્લી રાલિસુ વિકરાનુ ।

નોનુ રાવમળ યા મેરી નારિ, જે કુછ સહડ તડ રાસમુમારિ ॥૧૧૬॥

કરડમોલુ મિરિ રાની સપ્થો, જિડ વિહુણુ ઘરણિ પડિ ગયો ।

વમળ મહરણી નૂન રાડ, જાહ હથળાપુર લાઘડ ઠાડ ॥૧૧૭॥

નિન રડ મનિ રાનિમુ ન્યડ, નનિ ત્રિયા કહ રાજા મયડ ।

મા ગીયા હ્યડ ઘર વાસુ, કૂરડ દોમ કિ દીજડ તામુ ॥૧૧૮॥

ને નાનિ વેમાનક વલડ, જે ધૂનાનો મડથી ચલડ ।

ને નાનુ મો નોનડ કવિલાનુ, તડ મ્હારડ હોહ દેવે માસુ ॥૧૧૯॥

ને નાનડ મુવડ મરિ ગ્રામિ, વાનિ વરુણ વેસોનર સાસિ ।

નિનુ મડ મુવડ પ્રાગ મનેહુ, તિહ મરિમડ કિડ તૂટડ નેહુ ॥૧૨૦॥

નાનિ નનુ નિનિ વિનામી મડ, દાત જીમ મુરછાગતિ તર્ડ ।

નાનિ ન દેખિતુ મામુન કુરડ, મનિ કુનુચ્છડ મુનિ વત્તરડ ॥૧૨૧॥

વિનિમળ વમળ પડન ગ્રાડ, ગ્રામડ દેવડ પડી વિલાડ ।

નોનિ નાનિ નનુ નાની, નાનિ જાનિ નિ મુડ પડી વિકરાલિ ॥૧૨૨॥

નોનુ નાનો નનુ નાડ નાલડ નવળા દેવ્યા જાડ ।

મુડ મુડ નનુ વમળ ગયો, તડ કુરડડ હિયડ ચીનયો ॥૧૨૩॥

आलउ छोडि गयो कुकडा, करण बलाप करइ वापडा ।

किउ उत्तरियो तिहूँ य भई, या वापुडी अणु खावइ मुइ ॥१२४॥

खा पसारि हियो वर्यो, कूठाणि चरित भूलि उत्तरयउ ।

..... ॥१२५॥

कइ तू रभा कइ सुरसनि, कइ पारावती ।

सती सती करि नेउ गयो, पख सनारि टपकि मुह लियो ॥१२६॥

जाम कुकडउ गहउ मजारि, त जाण्यउ मनह भूलि चूकि मइ पाउ दिन्हउ ।

हउ मूरख अबुभ नर तुभ वयणि तिनउ ॥

ते नर मरहि न उवरहि तिय वेसापि कबुध ।

काइ कर नन उजले जउ भीतरा कसुध ॥१२७॥

तइ चाणाइक पढे असेस, तिथि महरता जाणहि असेस ।

हल भेखला वसीकरणु ततु मंत तिय चरितु जाणाहि ॥

तिय वदि तन जाणही रे कुकडा मतिहीण ।

आख्या पाटा बाधि करि, पगाह वजावहि वीण ॥१२८॥

जउ मोहणि छाल्यो रूपमगदु मसि कोमला दिक मुनरिदा ।

मयण सुदरि छल्यउ मायासुरु रभा छल्यउ हारिचदा ॥१२९॥

जोजन गधा छल्यउ असुर जिउ रावण सीय वर नारि ।

कन्हउ छल्यो बहुडि योगिणी, तिउ कुकडा मजारि ॥१३०॥

मजरि प्रभणहि सुणहु कूकडा, इहु ससार असार ।

आवागवण अरहद जिउ अछइ, अवचलु इहु करतार ॥१३१॥

ए नल नीव विधाता नरवइ गय ते ससारि ।

के दिन दहु पहली पलाणइ के पाछइ दिन चारि ॥१३२॥

सप्त पताल करइ बिल मूसो अति विलाइ खाई ।

मच्छ फिरइ साइर माहइ नितिहि सो हाटि विकारि ॥१३३॥

हरणा खोज दुरस दीसइ जहा पासा तहा पाउ ।

पूरव दत्त पायइ के राणा के राउ ॥१३४॥

मुभ नइ आज पच चउ लघण, करिमि कर इह लाघु ।

क्यारि पहरि निसि तुभ मउ खीणी, तिसु घणु हियटउ दाघु ॥१३५॥

अव भव आणि गुसाईं दीन्हउ छोडउ नाहि साउ ।

गहिइ साकुकड मो जोस वारिजइ लेह किसइ लेह तो नाउ ॥१३६॥

कुइणा वयण सुणि सु भलि आलइ कुकड घावइ ।

मरा वयण हा हिवहिणी पासिविसी समभावइ ॥१३७॥

जदि हउ इनि कुकुडि लोडी तहि म्हा काया कोमु ।

इस पहिली मुभ खाहे वहरणी जिउ कुलह न आवइ दोमु ॥१३८॥

अभक्ष किउ खाइजइ भख छोडियइ गवारि ।

तुम्ह भरतार घणा कुकडसी बिलमहु इहु सनारि ॥१३९॥

इहु ससार असारहु मजारि तुम्ह जाणाहि सहू भेउ ।

नाहु अप्पणउइ मानीजइ जिउ पूरजियइ सुदेउ ॥१४०॥

मइ दुख घणा सह्या कुकड कारयाणि तदाईं आडी ।

जीउ बिहूणी हू देवहणी ताम पर पडी ॥१४१॥

[illegible]

भरी सभा महि लाघउ लोडि, बूढीठा घाल्यउ वहीडि ।
 घर बेगाल मिहाल्यउ राइ, नरवड दीन्हउ दरव पमाइ ॥१६१॥
 स्यउगुण जाइह्यउ ले नारि, रखवाला बइसाल्या बारि ।
 जोगी तरा बेस ठग करइ, खपर ले बलि भिक्षा फिरइ ॥१६२॥
 छह छह मास जब बिलसता एकाल पास वमासपित्तोयो ।
 अथ दरबहुडपहि आहि, राउ न देइ तउ वपाखाहि ॥१६३॥
 रातउ हयंउ न मीठउ खाधु मन चित्यो न बिलसण लाका ।
 करि उठारा तिह घाल्यउ सासा, इसु निघन स्यउ हुबउ पर बास ॥१६४॥
 सतगुण भणइ निसुणि हे नारि, मति जानाहि तू इहु परिवारि ।
 साइर दीपइ पदारथ चारि, दुइ बिलसागा इतु ससारि ॥१६५॥
 कहउ भेद स्यउगुण स्यउ जाइ, वध्याउ सोई पटोलइ लाइ ।
 चड्यउ रोस दीन्ह करहरी, कालहु पहि ऊपटियो छरी ॥१६६॥
 उंसिड गुण तू काल पाभितइहू पूछ्यउ देखि बेसासि ।
 जीवदया कीजइ ससारि एकया सुणि पावइ मारि ॥१६७॥
 सिउगुण भणइ निसुणि हे नारि, चद्रसेणि राजा ससारि ।
 नतही चडइ सहस लख्य जे चडइ भूबलि वासी माँम न खाइ ॥१६८॥
 मारइ सहर लख्य जे चडइ कुमुग तो कउसा पडइ ।
 सभ सावज मिलि भेट्यउ राइ एक एक निति पडिसी भाइ ॥१६९॥
 खोडउ हरिण लगावत उपाई पडलि दुवारि पहुँतउ भाई ।
 वाग विछनी हडइ हरणि भमिस हाइ बडी सारपणि ॥१७०॥
 पहु फूठी जठ ऊगत भागु गहाणइ लागी हरणी जागु ।
 मद पखी निहालई खडउ हरण कहइ म्हारउ उसरउ ॥१७१॥
 हरिणी कहइ न घालउ घाउ तउरसा विन त्योराउ ।
 आपु आगइ लियउ बुलाइ सत दीठउ घाल्यउ मुकलाइ ॥१७२॥
 हरणी हरण हुबउ घर वासु एक रयणि कइ भगि विलासु ।
 तू आया हूवा छ मास पिवइहितू भोग विलासु ॥१७३॥
 पिता काजि न फेडहि आपु कितु मुक्त मारि सहइ सिरि पापु ।
 केड का डाहि कीरि वादी रासि, भाड्यउ भोड्यउ काल रासि ॥१७४॥
 कालत देख्यउ हियइ बिचारि, ठगु मारयउ व पीलि दुवारि ।
 कूकडि सरस कहाणी कही, सा मंजारि मोनि करि रही ॥१७५॥
 जे मजरि करतारा डरहि हूह करती हाहा करइ ।
 मजरि तूसि हसइ हड हडइ, छुटई कूकड मगरी चडइ ॥१७६॥
 कुकडी कुकडा जीवा लगइ, मा मजरी तव बिलखी भमइ ।
 हरियाणउ लाटीहु गाउ पाल पूत बल्हा इषु नाउ ॥१७७॥
 मजरि तरणी सो करति करइ, जिणि छदि नीयउ तिणिही उतनइ ॥१७८॥
 इति कूकडा मजारी चउपई समाप्त ॥
 सवत् १९६२ वर्षे अश्विनि मासे शुक्ल पक्षे चतुर्थ्या तिथी शुक्रवार वरी नामद्व
 मध्ये लिखत ॥ पातिसाह श्री भक्तवर राज्ये ॥ श्री ॥

92

राजस्थान के श्री अजरबन्द नाहटा कल्पय महत्वपूर्ण प्राचीन लोकगीत

राजस्थान का लोक-साहित्य बहुत ही समृद्ध है। यहाँ गीतों और वातों के रूप में मौखिक सामग्री के अतिरिक्त लिखित रूप में भी प्रचुर सामग्री प्राप्त है। जैन विद्वानों ने लोक-कथाओं को अपने ग्रन्थों में गृहीत किया है जिससे उनकी प्राचीनता का पता चलता है। इसी तरह लोक-गीतों की 'देशियों' को भी उन्होंने रास, स्तवन, सज्जाय आदि रचनाओं में प्रयुक्त किया है जिनसे वे लोकगीत कितने प्राचीन हैं इसका महज ही अनुमान लगाया जा सकता है। लोकगीतों की 'देशियों' की प्रारम्भिक पंक्ति उन्होंने अपनी रचना के प्रारम्भ में उद्धृत कर दी हैं। कुछ लोकगीतों को तो उन्होंने पूर्ण रूप में भी लिख रखा है। ऐसे पाव सौ बरस तक के लोकगीतों का लिखित रूप हमें प्राप्त होता है।

जो लोकगीत पूरे लिखे प्राप्त हुए हैं, उनमें से कुछ हमारे मध्य की हस्तलिखित प्रतियों में हैं। मैंने उनको जैन साहित्य महागुपी न्यायिक मोहनदास देसाई को भेजकर उनके जैन गुर्जर कवियों भाग ३ पृ० २०८३ में २१०४ में प्रकाशित करवा दिया था। श्री देसाई महोदय ने अपने इस ग्रन्थ के परिशिष्ट में २३२८ देशियों की अनुक्रमणिका प्रकाशित की थी। उन्होंने अवश्य ही इस सूची को तैयार करने में सैकड़ों रासादि ग्रन्थों का उपयोग किया था। फिर भी हजारों रास चोपाई आदि रचनाएँ अभी ऐसी और भी प्राप्त हैं जिनमें उनकी सूची के अतिरिक्त अन्य देशियों का भी उपयोग हुआ है। परन्तु ऐसा परिश्रम साध्य भागीरथ काम करने वाला आज कोई देसाई दिखाई नहीं देता।

मुझे कुछ फुटकर हस्तलिखित पत्र एवं गुटकों में इधर और भी कई ऐसे लोकगीत मिले हुए मिले हैं, जिनमें से एक गुटके के गीतों को यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। यह गुटका मुनि पुण्यविजयजी के संप्रदाय का है, जिन्हा

नतीक जमीन का किसी ने नहीं किया है। यहमशाराद जाने पर मैंने मुनि श्री
 २ मर्यादा मुनि का प्रथम बार प्रयोजन किया और उनमें से कई महत्वपूर्ण
 मुनि जीवित स्वरूप में उपलब्ध नामों की नकल करवा ली। प्रस्तुत
 मुनि मर्यादा १३६० दि० का है, जो नया नगर में ताराचट्टीय मुनि वृद्धि कुशल
 का किया गया है। उनके प्राप्ति के दो पत्र फट गये हैं। पत्रांक ९ में ११
 और १२ में १४२ का जो लोहगीत लिखे हुए मिले, उनको इस लेख में
 प्रकाशित किया जा रहा है।

इन लोहगीतों में से एक भी लोहगीत अभी जनमुंज पर प्रचलित प्रतीत
 नहीं होता और न उनका उपयोग ही जैन रचनाओं की देशियों आदि में हुआ
 है। १९६६ वर्ष पूर्व लिखे हुए ये लोहगीत कम से कम तीन-चार सौ वर्ष पहले
 जनता में प्रचलित रहे होंगे। इतने पुराने लोहगीतों को लिखा रखने का
 श्रेय वृद्धि मुनि को है। उनमें से एक लोहगीत पंजाबी का भी है।
 अन्य सभी गीत राजस्थानी भाषा में हैं।

नया नगर कौन सा स्थान था, यह निश्चय करना कठिन है। नये-नये
 नगर बने हैं, पैना ही यह भी कोई नगर है। इस नाम वाले नगर राजस्थान
 का भीगद में है। यदि गुटके के लिखने के स्थान का निर्णय हो जाता तो ये
 लोहगीत किस प्रदेश के हैं, यह भी निश्चय हो जाता और आज उस प्रदेश में
 प्रचलित है या नहीं, इसका पता लगाने में सुविधा रहती।

उनमें अधिकांश लोहगीत शृंगार रसात्मक हैं। एक गीत 'गिरनंदराम
 मामी' रचित है। यह गीत माहन की धवल है अर्थात् श्रीकृष्ण से सम्बन्धित
 है। अन्य गीतों में माण्डवगढ़, बीकानेर, उदयपुर आदि स्थानों के नाम आये हैं।
 एक गीत की कुछ पंक्तियाँ ही मिली हैं, जिसमें मोहम्मद अमीरान के बाग का
 नाम आता है। यह बाग कहीं है, इसका पता लगाना आवश्यक है। उस समय
 के सामाजिक जीवन की जानकारी भी उन से मिलती है। कई गीतों में दारु,
 प्रमथी, नाग आदि का उल्लेख है। यहाँ बीजापुर की नाग की प्रसिद्धि भी
 प्रतीत होती है। एक गीत में कुवर आमा जी का नाम है। अन्य में जोधपुर
 के अमरनाथ अर्थात् अजीतसिंह का नाम आता है। ये लोहगीतों में अपने
 समय के राजाओं के नाम प्रयुक्त कर दिए जाते हैं। अतः यह कोई जरूरी नहीं
 कि यह गीत उनके समय में ही बना हो।

सुगणां मारु (१) (राग मल्हार सामेरी)

देखी ढाल योजनाया ॥

सुगणा मारु मीठा मारु मामगीया ।

मुगुणा मारु रगमरि मादय पल्हाण हो,

रगमरि रगमर, रग मरड रे, मारु मामर्या ॥१॥

मीठा मारु सुगणा मारु सामरीया-

कि हजा मारु थे पाडल म्हे जाय हो

एकण एकण धाणइ रोपीया रे मारु सामर्या ॥२॥

सुगणा मारु मीठा मारु सुगणा मारु

थे मोती म्हे लाल हो ।

एकण एकण नय विराजीया रे, मारु मामर्या ॥३॥

सुगणा मारु मीठा मारु सुगणा मारु । टेक टोट ।

ये चावळ म्हे दाल हो

एकण एकण थाल पळसीया रे, म्हारा सामर्या ॥४॥

इति गीत छन्द भ्रमाल राग ।

रावत ढोला (गीत)-(२)

था पर वारी हो रावत ढोला,

था पर वारी हो रावत ढोला,

ढोलाजी ढोलाजी ये छौ माडवगट ना रे वासी ।

म्हेछा वीकानेरी ही, माणिंगर ढोला ॥पा पर.....॥१॥

ढोलाजी ढोलाजी म्हानइ ये नाहनकडी मत जाणी ।

म्हेछा वरसत वारा तेरा हो, माणिंगर ढोला ॥पा पर.....॥२॥

ढोलाजी ढोलाजी म्हानइ ओलू ही पाहरो भावद

ये छौ राजि परदेसी ही, रावत ढोला ॥पा पर.....॥३॥

ढोलाजी ढोलाजी ये सदेसो म्हानइ पठायो

म्हे छौ अरजावाली हो, रावत ढोला ॥पा पर.....॥४॥

इति गीत पद ॥

(राग काफी गीतं) .

अमलीड़ा रई गलि बांधी-(३)

अमली-न रे गलि बांधी रे, मा म्होनि अमलीड़ा रई गलि बांधी ।
 मोनऽ केरी रमगान बांधी रे, मा मोनऽ अमलीड़ा रे गलि बांधी ।
 री एन बावऽ गार बाजरी रे, अमली बावऽ भाग रे ॥ मा म्होनि
 रे री रमगानि बांधी रे, मा म्होनि.....॥ आरणी ॥ गीत छन्द ॥
 री एन विगजऽ गारिक टोपरा रे, अमली विगजऽ भाग रे । मा
 म्होनि

निनिम मगना मुरली रे गज, अमारऽ घर धरी हारी हे, । मा म्होनि....
 चुन्नी ने नू गो नू ली मेज विद्यातातो, मेजडली जोई जोई जोवा गई
 धी रे । मा म्होनि.....

अमली बहल डिवायऽ रे, मा म्होनि.....

री एन बावऽ गार बावऽ रे, अमली बोहरऽ कुतऽ कूँह रे, ।
 मा म्होनि.....

॥ इति गीत पद मपूर्ण ॥

म्हांका मारुडा नइ किए विलंबायो (४)

राग मल्हार, काफी मिश्र

म्हां का मारुडा नइ किए विलंबायो । कि० ३

आज भाग माहिबाने कंन विरमायो, हो राज ॥१॥ म्हा० का छन्द-टेक
 मधऽ रत्नायी योत्रलवायी

आज बाई दावऽ री गुगनि बनायो, हो राज ॥२॥ म्हा कि वि. २
 नू टि नू नो केरयो जी

आज बाई अमली ग माना घरि आयो हो राज ॥३॥ म्हा का०
 वि० हो राज ३

उदयपुर री नागऽली कवायो

आज बाई नर नर नयन बनायो हो राज ॥४॥ म्हा० रि०

प्यारा लागो-(५)

राग सामेरी काफी

अब म्हानें प्यारा लागो छो जी, प्यारा लागो छो जी ।
 प्यारा लागो छो जी राजि, प्यारा लागो छो जी ।
 चरखा लायो पूणी लायो, भीणा भीणा सूत कतायो रे ।
 न्हानी रे येठाणी रे, भाभी प्यारा लागो छो जी ॥१॥
 अब ये प्यारा लागो छो जी ॥ आकणी ॥
 हाथ मा लेयो लोग सोपारी, पान नो बीडो हाथ ।
 जेठजी नइ पाग बणास्या, जास्या साहिवा रइ म्हे साथ रे ॥२॥
 न्हानी रे येठाणी रे, भाभी प्यारा लागो छो जी ।
 इति गीत ॥ लिखितेद श्री नृव्यद्र गे ॥
 सवत् १७६० । १६२६ प्र० ।

गिरनंदराम स्वामी रचित मोहन घवल

(बालूडा योवण जाय)-(६)

राग टोडी पंजावी

मेरा बालूडा योवण जाय रे,
 मिक्खू जीवू, क्यू जीउ रे ।३। मि० डोढ ।
 नद का लाला मुरलो वाल्हा, मो कु चाल्यो ढोरी लगाय रे ।
 मिक्खु जीवु, मेरा बालूडा योवण जाय रे । मि० क्यू जी० ४
 जंसा फल चवेली का वाला, घूप पडें कुमिलाय रे ।
 मि क्यू जीवू, क्यू जीउ रे ।४
 मेरा बालूडा योवन जाय रे । मि० ॥२॥
 पीय बिना पीली भई मइ मरू कमल विपाय रे ।
 मि क्यू जीवु, क्यू जीउ रे ।४।
 मेरा बालूडा योवण जाय रे । मि० ॥३॥
 गिरनंदराम सामी वीनवइ, मोहन का घवल गाय रे ।
 मि क्यू जीवू, क्यू जीउ रे ।
 मेरा बालूडा योवन जाय रे । मि० ॥४॥
 इति गीत सम्मत् ॥

तुं आवि मिल-(७)

तुं आवि मिल रे । प्रभो प्रभो प्रभो प्रभो ।
 प्रभो प्रभो प्रभो प्रभो । प्रभो प्रभो प्रभो प्रभो ।
 प्रभो प्रभो प्रभो प्रभो । प्रभो प्रभो प्रभो प्रभो ॥

पंजाबी-लंगीदी वे प्रीत-(८)

(ध्रुपद छंद गीत)

लंगीदी वे प्रीत उन्हा लान्ह चगे रावे, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ।
 लंगी वे लंगी वे लंगी, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ॥१॥
 लंगी वे लंगी वे लंगी, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ।
 लंगी वे लंगी वे लंगी, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ॥२॥
 लंगी वे लंगी वे लंगी, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ।
 लंगी वे लंगी वे लंगी, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ॥३॥
 लंगी वे लंगी वे लंगी, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ।
 लंगी वे लंगी वे लंगी, मुट्ठी दा हात्त न कोई प्यार वे ॥४॥ ६०

ढोला (६)

मे दोला न जाणा, दोली म्हाति काई जाणा
 मे दोला न जाणा, दोली म्हाति काई जाणा ।
 मे दोला न जाणा, दोली म्हाति काई जाणा । मे दोला.....॥१॥
 मे दोला न जाणा, दोली म्हाति काई जाणा । मे दोला.....॥२॥ ॥६०॥
 मे दोला न जाणा, दोली म्हाति काई जाणा । मे दोला.....॥३॥ ॥६०॥
 मे दोला न जाणा, दोली म्हाति काई जाणा । मे दोला.....॥४॥ ॥६०॥

ढोला जी री करहलड़ी (१०)

(राग मल्हार सोरठी)

ढोल्हाजी री करहलड़ी, करहलड़ी कटकारउ
राजिदे म्हानउ मेलउजी, ऊटडा रे गळइ धूधरा
साढडीया नइ सोवन वागउजी,
साहिवा म्हारा, साढडीया नि सोवन वागउजी
ढोलाजी री करहलड़ी गुणसाधर, ढोल्हउ म्हानउ मेलउजी ॥१॥

आरुणी

(छन्द) जो थे चाल्हउ साहव चाकगे साहव म्हारा तो घण गे नवग
हवालोजी ।

ढोलाजी री करहलड़ी, करहलड़ी मिमिरी रो कूँजउ म्हानउ मेलउजी
॥२॥

ढोला मारू थे परदेशी होय रह्या, कै साहिब म्हारा धारी घण जीव
वाटउजी ।

ढोलाजी री करहलड़ी, करहलड़ी मोल्या री माळा म्हानउ मेलोजी ॥३॥

ढोलाजी री करहलड़ी, करहलड़ी मेडतियो ठाकुर म्हानउ मेलउजी ।

ढोलाजी री करहलड़ी, करहलड़ी नवगढ रउ भइए म्हानउ मेलउ-
गज ॥४॥

॥ इतिराग गीत, छन्द चउक्क ॥

" लेखने प्रशस्ति—सम्बत् १७६० वर्षे शाके १६२६ प्रवर्त्तमाने । वनन्त
मधु । चित्र वदि १३ जयाया । श्री तपागच्छे । ५० श्री ५ श्री घीन्कुशल ग०
शिष्य घण नाए घड गरिण श्री ५ श्री गजकुशल ग० शिष्य ज्ञानवृद्धि श्री ५ श्री
वृद्धिकुशल गरिणि लिख्यते । श्री नवीननगर मध्ये । देशी राग १००८, देशी
१००८ नुपता १०८ टपा ध्रूपद छन्द तार कठ स्वर ओठ ताळ हृदय । नामि
चक्र १००८ । श्री गणेश लबोदराय नम । श्री नम । गरिण श्री १०८ श्री
गजकुशल गरिण गुरुभ्योनम अथ राग ३६ रागणी । मन्त्री । ६ पट राग ।
गाथा । प्राकृत । छन्द । टेक । दोडिउश्च । चउपय । दुवपय । ध्रूपद ।
अष्ठपदी छन्द । जकडी । जिह्वाप्रणी । कठ गल ग्रहण । नापा नून नहिता

गोनय छन्दगीतु । प श्री वृद्धिकुशल-गशिनि लिखिणे नव । मुक्ति मोक्ष पग
युग भमक छिमक । अनितान कर्णाविर्भाव विवर्ण सुमण सुमय । स्व वृद्धिकुशल
निम्नगुणव वाच्यार्थ ।

प्रति मुनि पुण्यविजयजी सग्रह गुटका न० १४ (प्रारम्भ के २ पत्र फट
गये हैं । तीसरे पत्र से सात के बाद आठवां पत्र नहीं है तथा नव से ग्यारह में
उपयुक्त देगिया और प्रजस्तिया लिखी हुई हैं ।) इसी गुटके में आगे पत्रांक
१३६ में १४२ तक फिर देगिया लिखी हुई है, जो आगे दी जा रही हैं -

नवरस राग उल्हास टेढी पाग (११)

राग काफी राग मल्हार गीत

छन्द राठोड़ी देशी (१) ढाल सिंगार रसेच

टेढी ने झुकावड मारा राज टेढी न झुकावड

ने भ्रमना रो मातो रे पाषना हो राज ॥१॥ छन्द आकणी

दोष्टि टेक याहरी रे ओछू म्हे करा रे गाढा वालिमीया ।

। पीऊडा म्हागे-म्हागे न करड रे कोय लहुडीजी रा वालिमीया ॥१॥

टेढी.....

गोहन्दी रज मल्हार नाचीया रे गाढा वालिमीया

पीऊडा हम मिम दीन्दी म्हा मु वोन लहुडीजी रा वालिमीया ॥३॥

टेढी.....

लहुडीनः मगाम्या पोमचो रे गाढ वालिमीया

मामवहीनः चून्तःचोन लहुडीजी रा वालिमीया ॥४॥ टेढी.....अकणी

दाखडो (१२)

राग मल्हार भमक छन्द ताल शृंगार रसेषु

सगरो मगायो म्हाग राज दाखडो । म० ४

दोष्टि देगि चनिरे तन्हायी छानि मावाली ॥१॥ म्हाग राज आकणी

-छन्द टेक

दान मगाम्या मुठरा मुठरः रे राज, तोल्यव टाक विनाय

मचो नागः नागगोत्री, मोन न मरचड जाय ॥२॥ म्हाग राज

(राग काफी देशी ढाढ । श्री नवानगर स्नाने ग० श्री ५ श्री गजकुशल ग० श्री ५ श्री प्रीतकुशल, आर्याबाई, श्री माणिक लक्ष्मीजी एव श्री वृद्धिकुशल पंडित ।)

गाढा राज मारु (१३)

गाढा राज मारु, गाढा रे राज मारु, म्हाका गाढा राज मारु ॥टेका॥
अमला रो मातउ दारुडानइ छाक्ये
पाणीडारइ मोल्लै दारुडाउ म्हानू पायी रे
दारुडो म्हानइ पायी रे, म्हारा गाढा राज मारु ॥१॥ अकणी गाढा २
गाढा राज..... पाणीडारइ.....पायी रे ॥

(गीत छन्द सोरठ मल्हार रागे चकल्ही)

नाणदी रो बीरो राज मोहन म्हारो
शोकडल्हीरउ भंभेरयउ म्हारइ घरि न्हायी रे ॥२॥ म्हा का.....
(इति सोरठ मल्हार छन्द गीत । प्याला रसेण च)

कठइ रति मांणी-(१४)

एँकारी नमः ॥

देशी ढाल राग=काफही राग सांमेरी मल्हार

कठइ रति माणी कठै रित माणी
मृगानयणी रा कत, थे कठइ ऋतु माणी । पूर्व अकणी दोडि
अळगारा खडीया राजेंद आया ।
हा जी थारा हा जी थारा घोडिला री दपट पिछाणी हो राज ॥१॥
कठै रति माणी, कठै रति माणी
कठि ऋति माणी हो राज०
हौ मृगा नेंणी रा राजि थे कठै ऋति मांणी ॥२॥
थे कठइ ऋतु माणी ॥३॥ ॥४॥

इति श्री सामेरी रागे

प श्री वृद्धि कुशल कठश्वरे गीत छन्दः ॥श्री॥

घोतम ॥ मुंदरी नमः ।

मृगानवली रा ढोला-[१५]

राग मांमेरी-सोरठ काफी

मृगानवली रा ढोला मृगानवली रा ढोला
मृगानवली रा ढोला ॥ मृगानवली ॥ डेह
मृगानवली रा ढोला मृगानवली रा ढोला
मृगानवली रा ढोला ॥ १॥

मृगानवली रा ढोला । मृगानवली रा ढोला ०४
मृगानवली रा ढोला ॥ श्री नमः १०८

दाहदारे अमली रा भोल्ला-[१६]

राग मांमेहरी मिथ मल्हार छन्द-शिस्वर :

दाहदारे अमली रा भोल्ला राग
दाहदारे अमली रा भोल्ला राग ॥ मृगानवली-देह
उ मृगानवली राग मृगानवली राग मृगानवली राग
मृगानवली राग मृगानवली राग ॥ १॥

दाहदारे अमली रा भोल्ला राग
दाहदारे अमली रा भोल्ला राग ॥ २॥

दाहदारे अमली राग मृगानवली ॥

ओलूटी (१७)

राग देवी

ओलूटी राग मृगानवली राग मृगानवली राग
ओलूटी राग मृगानवली राग मृगानवली राग
ओलूटी राग मृगानवली राग मृगानवली राग
ओलूटी राग मृगानवली राग मृगानवली राग

घोड़ीडा रो घोयो, केशर मां लपेट्यो
 ठम्मा ठम्मा करतो नइ आवइ । म्हानइ .. ॥१॥
 ढांला नइ मगायो ढाला नइ मगायो
 वारा फूलहा बाळी, टे परमल पेटी
 ढांला ढलका करतो नइ आवइ । म्हानइ.... ॥२॥
 घोडला मगायो घोडला मगायो
 लावी नळीया लाटु काडावावाळा
 खुररा खुररा करता नइ आवइ, म्हानइ॥३॥
 भागडली मगायो भागडली मगायो
 बीजापुर'वाळी, तीखी निम्रणीयाळी
 खम्मा-खम्मा करतो नि आवइ । म्हानइ.... ॥३॥
 इति गीत । लि । घोराजी म०

भमरजी वांणिया [१८]

देशी

नाडी मा बोलें डेडका बाहला, मगरें मा बोले मोर ।
 गामे मा बोलें वाणीयो, सरकें घाघरीया री डोर ।१।
 भमरजी वाणीया निजरा रो मेळो दे ॥
 ऊची नें मेडी भगमगें वाल्हा, भर मर वरसें मेह ।
 आवु तो मीजें चूनडी, नावु तो नूटें नेह ।२। म०
 मारें तो आगण पीपळी वाल्हा, उण माहें काळो नाग ।
 खाघी हती पण ऊगरी, कुंअर आमाजी रें भाग ॥३॥ म०
 गाडी गुजराती री आवई, माहें भरीयो हायी रो दात ।
 भमरजी ह्वं तो मौळवें, मो नें लाल घूडारी खानि ।४। म०
 इति देशी ॥

पोढो नणदी रा बीरा [१९]

पाळी पुराणी हे, सरोवरीयो म्हारो नित नवोजी ।
 हाजी भरीयो हिलोळा लेय, के मोरी सहीआं ए ।

॥१॥ के मर जे पर तेई मरो, ॥ ११॥
 मर दुगली ॥ सी जरी ते मारी नित नवीजी ।
 मरी दुगली ते मर मु जान बुझाता तो चतुर सुजाण के मो० ॥१२॥
 मर दुगली ॥ पाटली ते मारी नित नवीजी ।
 मरी मरतने जग मग जोत के दीवडने जी जग मग जोत के मो० ॥१३॥
 मर दुगली ॥ मोजनीगे मारी नित नवीजी
 मरी मरत मारी मर मृजाण जोमग वाळो चतुर सुजाण के
 मो० ॥१४॥

मर दुगली ते पावगो मारी नित नवीजी
 मरी पोरी पोरी नगदी रा वीर के पोटी० के मो० ॥१५॥
 मर दुगली ते, मारागे मारी नित नवीजी
 मरी मर मर मरजीत के मोरी म० उति छ

पता—
 माहटो की गुवाड,
 बीकानेर (राजस्थान)

अमरसर (शेखावाटी) सम्बंधी १७ वीं शत के जैन उल्लेख

(श्री अग्रचन्द नाहटा)

भारत अनेक प्रदेशों और ग्राम-नगरों में विभक्त है । प्रदेशों की सीमा बदलती रही है और पुराने नगर एवं ग्राम भी उजड़ते तथा बसते रहे हैं । उनके नामों में भी परिवर्तन होता रहा है । मुसलमानी राज्य काल में बहुत से ग्राम-नगरों के शासकों ने अपने नामों पर बदल डाले । इसी तरह कई राजाओं और ठाकुरों ने अपने शासन में यथारुचि नये नाम रख दिये । इससे अनेक प्राचीन स्थानों की ओर से बड़ी असुविधा उत्पन्न हो गई है । किसी-किसी स्थान में पुराने जिलालेख तथा आदि मिल जाते हैं तो उस स्थान के प्राचीन नाम का निश्चित रूप में पता चल जाता है । परन्तु ऐसे पुराने स्थानों के साधन प्रायः नष्ट हो चुके हैं । बहुत बार ऐसा होता है कि एक ही नाम वाले कई ग्राम-नगर अनेक राज्यों एवं प्रान्तों में कभी-कभी तो अनेक ही प्रान्त में पाये जाते हैं तो कौनसा उल्लेख किन स्थान में धित है, यह पता लगाना कठिन हो जाता है । लोक प्रसिद्धि में कई ग्राम-नगरों के नाम कुछ और ही मिलते हैं परन्तु लिखा-पढ़ी और संस्कृत ग्रन्थादि में उनके संस्कार किये हुए भिन्न ही देखे जाते हैं ।

अमरसर राजस्थान के शेखावाटी क्षेत्र का एक नगर है, जो १७ वीं शताब्दी में काफी अच्छी स्थिति में था । वहाँ समय-समय पर जैन-आचार्य और विद्वान पधारते रहे हैं । कई विद्वानों ने वहाँ संस्कृत और राजस्थानी भाषा में रचनाएँ की हैं । उनसे मालूम होता है कि १७ वीं शताब्दी में वहाँ १० वें तीर्थंकर गौतम का जैन मन्दिर था और दादा जिनदत्त सूरिजी और कुशल सूरिजी के स्तूप वहाँ पादुकाएँ भी वहाँ स्थापित की गई थी । खरतरगच्छ के आचार्यों एवं मुनियों का अधिक प्रभाव रहा है । जैन श्रावकों के घर भी उस समय काफी होने लगे । आज की स्थिति में बहुत अन्तर आ गया है । यद्यपि मैं स्वयं कभी वहाँ नहीं गया, अतः वहाँ की स्थिति का ठीक से पता नहीं है ।

[illegible]

1

भूमि अमरसर' नामक प्रकाशित हुआ था । उसके अनुसार मन् १६३४ में अमरसर में ओक टीले को चौरस किया जा रहा था कि उसमें तीस फीट की गहराई पर नक्षत्र पत्थर की दो मूर्तियाँ मिली । दोनों ही मूर्तियाँ बिना घड़ की हैं । उनका केवल स्कन्ध के ऊपर का भाग अर्थात् गर्दन, शिर आदि वचा है । श्री चंदेल के मतानुसार ये मूर्तियाँ कम से कम ८०० वर्ष पुरानी हैं । अमरसर की प्राचीनता और उनके नाम के उद्भव में उन्होंने लिखा है कि "अब से १००० वर्ष पूर्व वर्तमान अमरसर में ३-४ फर्लांग की दूरी पर एक सर था । उसी के तट पर अमरिया नामक गूर्जर की ढाणी (नगना) थी । कालान्तर में उसी अमरिया के नाम पर अमरसर विख्यात हुआ । अमरिया की ढाणी के सिलसिले में जो अमरसर बसा था, वह अब में ४०० वर्ष पूर्व ध्वस्त हो गया बताया जाता है । हा, भूमि में मिश्रित उसके विविध चिन्ह आज भी हम कदम की सत्यता सिद्ध कर रहे हैं । वर्तमान अमरसर की वस्ती लगभग ६०० वर्ष प्राचीन होने का प्रमाण मिलता है ।" आगे चलकर उन्होंने लिखा है कि "शेखावत राज के मूल पुरुष शेखाजी को सन् १४५५ में १६ वर्ष की अवस्था में राव मोहनजी के देहावसान हो जाने से ठिकाणे की जिम्मेवारी सभालनी पड़ी । राव शेखाजी को दक्ष-पन से ही अमरसर का प्रान्त प्रिय था कारण कि प्रथम तो उनका जन्म ही वहाँ हुआ था । दूसरा, यह इलाका युद्ध के लिये बहुत ही उपयुक्त था । एक तीसरा कारण यह भी कहा जाता है कि शेख बुरहानशाह की कुटिया अमरसर की सीमा में थी । राव शेखा का जन्म इस शेखजी के आशीर्वाद से हुआ था । अतः शेख की कुटिया में राव शेखाजी रहना चाहते थे । रावजी ने गद्दी पर बैठत ही अमरसर में गढ़ बनाना शुरू कर दिया, जो लगभग १ वर्ष में बनकर तैयार हो गया । तब वे अमरसर में रहने लगे । अमरसर का प्रान्त शेखाजी का स्वतन्त्र राज्य मान लिया गया और पूर्वापेक्षा अमरसर का राज्य अधिक विस्तृत कर दिया गया । इस तरह अमरसर में शेखाजन राज्य की स्थापना हुई । कहते हैं कि कुछ ही दिनों में अमरसर राज्यान्तर्गत ४५५ गाँव हो गये । आगे चलकर अमरसर राज्य का कुछ भाग शेखाजी के पुत्रों में बँट गया । रहा सहा दिल्ली के बादशाह ने छीनकर आमेर राज्य को मिला दिया । इसके बाद अमरसर केवल एक ठिकाना रह गया, जिसमें केवल ६० गाँव थे ।"

श्रीचंदेल ने अमरसर के दर्शनीय स्थान और तीर्थ के अन्तर्गत दाद-पोते की छत्रिणी का उल्लेख किया है, जो खरतरगच्छ के प्रसिद्ध दादाजी की छत्रियाँ हैं । इनके सम्बन्ध में लिखा है कि "यहाँ जो दादा-पोता नाम की छत्रियाँ हैं, उनमें जो चण्ड-पादुकार्ये बनी हुई हैं, उनके चारों ओर पत्थर पर खुदे हुए लेख इस प्रकार हैं :

(१)

स. १६५१ वर्षे वैशाख ४ दिने श्री
 अमरसर वास्तव्य श्री मधेन ज्ञाना ।
 दोहा सर गति आनि दास्य मोन नाने

स. १६६२ वर्षे व
 श्री- ३१० तनर मोम मणी
 ५५

उत्सुक लेख न० दो मे वाचना
 स. १६४४ के माघन मे अमरसर चौमामा ५
 जोरार की रचना की, जिसका अन्तिम पद्य इस प्रकार है-

मग मोर चमाछा भावण धुरई, नयनि अमर सरि सा
 बरमोम आर्णद भगति भरई, भयता सय सुखकार ॥५

यह मन्त्र एन के अनुसार श्री जिनकुशल सूरिजी की पादुका सवत् १६५१
 वैशाख वदि ५ श्री अमरसर वास्तव्य श्री मध ने बनवाई । इस लेख मे मन्त्री कर्मचन्द
 का नाम जाना है । यह लेख अशुद्ध छपा है । मंत्रीश्वर कर्मचन्द वीकानेर के राजा
 मर्दान्त के मन्त्री के ओर आगे चलकर सम्राट अकबर से भी सम्मानित हुये थे । वे
 श्री जिनकुशल सूरिजी के परम भक्त थे । अतः सम्भव है कि वे अमरसर की इस
 परम पादुका के बनाने के प्रेरक हों । श्री जिनकुशल सूरिजी के शंभ का उल्लेख
 स. १६४४ ममयगुम्बरजी ने अपने श्रीजिनकुशल सूरि गीत मे किया है—

गति हो मम हरिमन दादा, श्रीजिनकुशल करि सुप्रसादा ।
 स. १६४४ ममयगुम्बर दादा अग मिंगलउ जपड जसवादा । दा। १
 ममयगुम्बर नृपति उदाग, उन्ड तथा दीमड अवतारा ।
 स. १६४५ सनड परिवारा, ने मम तेज प्रताप तुम्हारा । दा। २
 स. १६४६ सनड परिवारा, अरवटिया नद तं आधारा ।
 स. १६४७ सनड परिवारा, मनवटिन पय पुरि इमारा । दा। ३

नयर अमरसर यु म निवेणा, प्रनिद्धि घणी प्रगटी परमेमा ।

सेव करइ सद्गुण सुविशेषा, एह नमयसुन्दर उपदेसा ॥ १४

कविवर समयसुन्दरजी ने सवत् १६६५ में चेत नुदि १० की अमरसर के चातुर्मासिक व्याख्यान संस्कृत में रचा था —

“श्री महिक्रम मवति, वाणुरम भ्रमर चरण शशि मग्ने ।

श्रीअमरसरनि नगरे, चैत्र दशम्या च युवनायाम् ॥”

समयसुन्दरजी के उल्लेखानुसार युगप्रधान जिनचन्द्र सूरिजी ने पट्टभर जिनसिंहसूरिजी अमरसर महिने भर रहे थे । माह यानसिंह के आग्रह से उनके सबध में एक गीत उन्होंने बनाया, जो इस प्रकार है —

अमरसर अब कहउ केती दूर ।

पगि पगि पगि पथियन कू पूछत, आये आणद पूर ॥ प्र० १॥

पातसाह अकबर के माने, जिहा श्री जिनसिंह सूरि ।

मास कल्प राखे आग्रह करि, यानसिंह माहि नरूरि ॥ प्र० २॥

गुरु के पद पकज प्रणमत ही, भाजि गये हुग भूरि ।

समयसुन्दर कहइ आज हमारे- प्रबटचइ पुण्य पतूरि ॥ प्र० ३॥

अमरसर में, जैसा कि पहले कहा गया है, शीतलनाथजी का मन्दिर था ।

उसके सान्निध्य में सवत् १६७६ के आश्विन पूर्णिमा बुधवार को चरतरंगरा के विशिष्ट विद्वान् उपाध्याय सूरचन्द्र ने ‘जैन तत्व मार’ नामक महत्त्वपूर्ण गीत की रचना की —

अमरसरसि वर नगरे, श्री शीतलनाथ लखि सान्निध्यात् ।

ग्रन्थोऽग्रन्थि समर्थः सुविदेऽयं सूरचन्द्रेण ॥ १४ ॥

अमरसर उस समय श्रेष्ठ नगर माना जाता था । उपर्युक्त गीत की नीचा में लिखा है—‘वर नगरे—श्रेष्ठ पुरे, ‘अमरसरनि’—अमरनगरी नामके’ ‘श्री शीतलनाथ लख सान्निध्यात् — श्री शीतलनाथ मूल नायकस्य सामीप्य प्राप्त्य नूनं चन्द्रेण —सूरचन्द्र नामा मया, ‘सुविदे’—ज्ञानाय, अल्पधियामाहन् विद्वान्नामजन्मोत्पत्त्यर्थं . .’

उपर्युक्त शीतलनाथ का भावपूर्ण स्तवन काव्यर नमयसुन्दरजी ने रचा है, जो नीचे दिया जा रहा है —

नयर अमरसर यु म निवेधा, प्रनिद्धि धर्मी प्रगटी पन्मेनः ।

सेव करइ मद्गुह सुविधेधा, एह समयसुन्दर उपदेनः ॥ १० ॥

कविवर समयसुन्दरजी ने सवत् १६६४ मे चेत मुदि १० को —
चातुर्मासिक व्याख्यान सम्कृत मे रचा था —

“श्री मद्विक्रम भवति, वाग्वन अमर चरण धनि मद्गुहः ।

श्रीअमरमरमि नगरे, चैत्र दगम्या च शुक्लादान् ॥”

समयसुन्दरजी के उल्लेखानुसार युगप्रधान जिनचन्द्र सूरिजी ने “सुविदे”
जिनसिहसूरिजी अमरसर महिने भर रहे थे । माह धानमिह के आगम १० :
सवध मे एक गीत उन्होने बनाया, जो इस प्रकार है —

अमरसर अब कहउ केती दूर ।

पगि पगि पगि पथियन कू पूछन, आवे आगुद पुर ॥ १० ॥

पातसाह अकबर के माने, जिहा श्री जिनमिह सूरि ।

मास कल्प राखे आग्रह करि, धानमिह नाहि मन्तूरि ॥ १० ॥

गुरु के पद पकज प्रणमत ही, भाजि गये हुन भूरि ।

समयसुन्दर कहइ आज हमारे- पवटपद पृथ पन्ति ॥ १० ॥

अमरसर मे, जैसा कि पहले कहा गया है, शीतलनाथजी का मन्दिर ॥

उसके सान्निध्य मे सवत् १६७६ के आश्विन पूर्णिमा बुधवार को —
के विशिष्ट विद्वान् उपाध्याय सूरचन्द्र ने ‘जैन तत्व मार’ नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ
की रचना की —

अमरसरसि वर नगरे, श्री शीतलनाथ नरि नातिपरा ॥

गन्धोऽग्रन्धि नर्मथ, सुविदेऽय मन्त्रचन्द्रेण ॥ १४ ॥

अमरसर उस समय श्रेष्ठ नगर माना जाता था । उपर्युक्त ग्रन्थों की रचना
मे लिखा है— ‘वर नगरे—श्रेष्ठ पुरे, ‘अमरमरमि’— अमरमरी नामके’ पुरी में —
नाथ लब्ध सान्निध्यात् — श्री शीतलनाथ मूल नायकस्य नाम्निष्ठ धारण गुरु मन्त्र
—सूरचन्द्र नामा मया, ‘सुविदे’— ज्ञाताय, अल्पधियामाहृत मित नगर मन्त्रेण ।

उपर्युक्त शीतलनाथ का भावपूर्ण स्तवन सूरचन्द्र समयसुन्दरजी ने रचा है,
जो नीचे दिया जा रहा है —

[illegible]

कलशः— इमं अमरसरं पुरं भिषं मुद्रं मात नदा नदं ।

सकलार्थं शीतलनाथं मामी, तदनं जगं आनन्दो ।

श्रीवच्छ लक्षणं वरणं कचणं, रूपं मुद्रं मोदं ।

ए तवनं कीधतं समयमुद्रं, मुणतं जनमनं मोदं ॥१॥

इति श्री अमरसर मंडन श्री शीतलनाथ वृहत्सत्वनं पूर्णं वृत्तं निर्मितं ।

खरतरगच्छ के आचार्य जिनसागर मूर्ति ने अपनी माता महिन न १२९९ के माघ मास में अमरसर में दीक्षा ग्रहण की थी । वोक्ताने ने जिनमंडन में अमरसर पधारें थे, वहां सामायक पोषधादि कर्म कृत्य हुए । श्रीमान प्रसीय धर्मा ने, जिसका उल्लेख अन्यत्र भी आ चुका है, जिनसागर मूर्ति का दीक्षा मन्त्रोपदेश धूमधाम से किया और रूपए खर्च किए । इसका उल्लेख जिनसागर मूर्ति साहित्य प्रकार पायाजाता है —

राग देसाख

बोहा— बड भाई विक्रम सहित, मात भणइ मु (तु) क नापी ।

करिसु आत्मारोचना, जिनमिह मूरि गुर हापि ॥१॥

दूध माहि साकर मिली, पीता आणद दाई ।

वचन सुणि निज मातना, हरखड कुमर मनि गार ॥२॥

विक्रम पुरधी अनुकमइ, सदगुरु करड (म) तिगार ।

अमरसर पडधारिया, श्री जिनमिह उशार ।

सामाइक पोसड करइ, पडिकमणड गुर पाणि ।

सजम लेवा कारणइ, कुमर मनई उजानि ॥३॥

श्री अमरसर सघ तिही, हरखिन धमड पपार ।

वाजिन वाजइ नवनवा, वरनडना मुप्रार ॥४॥

श्रीमालवशि सहामणड, धानमिह पिर पार ।

सजम उछव करणइ, खरचइ तिहा दह दिन ॥५॥

सवत सोळ इकमठइ, माह मामि तुन माहि ।

मात सहित दिक्षा लीयर, पट्टनी मननी पारि ॥६॥

तिहाधी चारित लेइ नड, सदगुरनापि तिगार ।

विद्या नीवइ अति धणी, परता हद पार ॥७॥

(जिनसागर मूर्ति साहित्य १२९९)

Reprinted From—

THE RESEARCHER

(A Bulletin of Rajasthan's Archaeology & Museums)

Editor
Dr. Satya Prakash

VOLUME—VII—IX

YEAR
1966—68



Published by

The Directorate of Archaeology & Museums,
Government of Rajasthan, Jaipur .

की सिद्धादि से लिप्त इस प्रतिमा के आयुधादि यद्यपि पूर्णरूपेण परिचोयमान नहीं है फिर भी दन हाथ स्पष्ट है जिनमें से दो वरद व अमय मुद्राओं में है और नौप आठ हाथों में ध्यानपूर्वक देखने से दन्त, पाश, परशु, मुद्गर, मोदक, त्रिशूल, अंकुश व अक्षमून प्रतीत होते हैं । इसके विपरीत नेगपत्तम् के नीलायताक्षीयम्मन् मन्दिर की कास्य हेरम्बगणपति प्रतिमा के पञ्चमुखों में चार मुख चारों दिशाओं में बने हुए हैं और पाचवा मुख इनसे ऊपर मस्तक पर है तथा डाक्टर श्री जनार्दन मिश्र ने अपनी भारतीय प्रतीक विद्या नामक पुस्तक में पृष्ठ ४१८ पर जो चित्र सख्या २ “घ” (सिंह वाहन विनायक) का विवरण दिया है वह प्रतिमा नागपत्तनम् (दक्षिणा, घ) के कथरोगण स्वामी मन्दिर की बताई गई है और उसका मध्यवाला मुख गजमुख और पार्श्ववाले दो मुख वराह के बताए हैं किन्तु गरुड के वराह मुखों का प्रमाण देखने में नहीं आया है और न इनके तीन मुखों का ही प्रमाण मिलता है अतः इस विषय में विद्वानों से प्रकाश की अपेक्षा है । अनुमानतः “भारतीय प्रतीक विद्या” में उल्लिखित प्रतिमा भी उपरोक्त नेगपत्तम् के नीलायताक्षीयम्मन् मन्दिर की हेरम्ब गणपति प्रतिमा की भाँति किसी समय पूर्ण रूपेण गजमुखी ही रही होगी और बाद में—सू ड भागों के खण्डित हो जाने से सम्भवतः पार्श्व के दोनों मुख अब वराह जैसे प्रतीत होते हैं क्योंकि चित्रसाम्य से उपरिनिर्दिष्ट दोनों प्रतिमाएँ प्रायः एक ही प्रतीत होती हैं । श्री भट्टाशाली ने भी अपने केटेलोग में डाका के समीप स्थित रामपाल की एक हेरम्ब गणपति प्रतिमा का उल्लेख किया है जिसकी प्रभावलि में गरुड की ६ छोटी प्रतिमाएँ निर्मित हैं जो सम्भवतः गणेश्वरों की ६ प्रमुख शाखाओं की प्रतीक हैं ।

(२१) उपरोक्त भेदों से भिन्न प्रकार की एक आसीन केवल गरुड प्रतिमा (१६वीं शती) श्री दरबार कोटा के गढ़ में प्रतिष्ठित है—

उत्तरकामिकागम के अनुसार—

स्वदन्त परशु कुर्यात् स्वदक्षिण करद्वये ।

लङ्कुक्ष वाक्षमाला च वामपाणावथोत्पलम् ॥

यह अपने ऊपर के दाहिने हाथ में परशु, नीचे के दाहिने हाथ में दन्त, ऊपर के बाएँ हाथ में कमल और नीचे के बाएँ हाथ में माला रखती है ।

(२२) एक अन्य द्विभुजी गरुड प्रतिमा वीरासन में आवेशपूर्वक परशु से आक्रमण करती हुई गाँगीरी स्थान से कोटा सन्नहालय में प्राप्त हुई है । सम्भवतः यह परशुराम के साथ हुए युद्ध का प्रतीक है ।

इस प्रकार प्रस्तुत लेख में गरुड प्रतिमा के प्रमुख भेदों का विवरण प्रस्तुत किया गया है । अग्रिम लेख में गरुड की प्राचीनता और उनका तथाकथित यक्षादि रूपों में अन्तर्भावादि की सम्भावना तथा गरुडेशी देवी पर विचार किया जावेगा ।

15

इसके स० १६१८ और स० १६५६ के दो लेख बच पाये हैं। प्राचीनता की दृष्टि से वंशीवाला मन्दिर महत्वपूर्ण है। यह बहुत ही विशाल ग्रहाते में बना हुआ है। सामने बहुत बड़ा चौक है जिसमें हजारों व्यक्ति बैठ सकते हैं। इसमें शिव और मुरलीधर के दो मन्दिर हैं, दोनों के ऊँचे शिखर आस पास सुशोभित हैं। इसके स्तंभ आदि पुराने हैं, अवशिष्ट काम नया प्रतीत होता है। शिव मन्दिर में फर्श से २५ सीढ़ी नीचे उतरने पर शिव लिंग आता है। शकर कुण्ड में पर्याप्त अन्धकार रहता है। ये मन्दिर प्राचीन हैं। इनका निर्माण कब हुआ? प्रमाणभाव में नहीं कहा जा सकता, पर मन्दिर में प्रवेश करते ही बायीं ओर कुछ प्रतिमाएँ रखी हुई हैं जिनमें से एक श्वेत सगमर्मर की प्रतिमा पर स० १५३३ मिति मार्गशीर्ष वदि ५ दुधवार का अभिलेख है, जिसमें नागौर के मूँधडा माहेश्वरी वंशीय सद्गृहस्थ द्वारा प्रांतिमा निर्माण कराने का उल्लेख है।

विमलेश्वर और मुरलीधर जी के मन्दिर के बीच दीवाल पर एक २० पंक्ति का अभिलेख लगा हुआ है जो मन्दिरों के जीर्णोद्धार के समय का है। इस लेख में ११ श्लोक और अवशिष्ट आठ पंक्तियाँ गद्यात्मक हैं। इससे विदित होता है कि पहले ये मन्दिर संकीर्ण स्थान में बने हुए थे एवं विष्णुदास के पुत्र नरसिंह द्वारा जीर्णोद्धारित होते हुए भी कालवश जीर्ण शीर्ण हुए देखकर त्रिपुरदास लोहिया माहेश्वरी के पुत्र गोपाल ने द्रव्य भण्डार एकत्र किया। पंचो तथा नागपुर के सभी भक्त वैष्णव महाजनो ने अपनी अपनी शक्ति के अनुसार द्रव्यदान किया। दान के द्रव्य और भण्डार के द्रव्य को मिलाकर स० १६६६ में मंदिरों का जीर्णोद्धार हुआ, और भूमि मिलाकर मन्दिरों को विशाल बनाया। स० १६७० मिति फाल्गुन सुदि ५ गुरुवार के दिन मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई। स० १६७१ मिति पौष शुक्ला १३ सोमवार मृगशिरा नक्षत्र में देवालय पर कलश स्थापन हुआ। इस समय बादशाह जहांगीर के राजकाल के साथ साथ राणा शगरजी के प्रति राज्य के उल्लेख हैं, जो तत्कालीन नागौर के जागीरदार मालूम देते हैं। इस जीर्णोद्धार में लोहिया-माहेश्वरी त्रिपुरदास के वंशजों का विशेष हाथ था उनके पुत्र गोपाल का नाम ऊपर आया ही है अन्त में दूसरे पुत्र गदाधर के पुत्र नारायणदास लोहिया एवं सूत्रधार पीरमहमद अजमेरी का भी उल्लेख है, यह प्रशस्ति मिश्र जोड़ा ने लिखी है। यह लेख संस्कृत में है।

इस लेख के पास ही अठ्ठ शताब्दी पूर्व का एक छोटा लेख आधुनिक राजस्थानी भाषा में खुदा हुआ है जिसमें वंशीवाला मन्दिर के सभा मण्डप व परिक्रमा में सुनार मोतीलाल के मकराना जड़वाने एवं शिवदास वामणीया सुनार द्वारा तीन तोला सोने की कण्ठी भेंट करने का उल्लेख है। यह लेख इस प्रकार है।

“श्री श्री १००८ श्री वंशीवाला-र मंदिर मांय सत्रा मंडप परकमा-मकराणो जडायो दास। सुनार मोतीलाल छेडा सीवदास राजा का छपरवाल वामणीया कंठी एक सोनारी जडाउ तोला तीन करदासुधी श्री ठाकुरजी रो उद्धव कराय ने भेंट कीनी। समत १६७५ पौष सुद १३ मंगलवार ॥ दसकत व्यास नानूराम बहादरदास का नायवत व्यास” ।

राजा श्री तया
परमात्मेश्वरी
मे भाने दोने ऐमे मेनी ती शोध अब
प्रकाशित किया जा
मे भाना चाहिए ।

५. - संज्ञा का अर्थ है प्रकृति का प्रकार है—

५११ गुरु भिक्षुः तत्रागच्छतः ॥

३. अतः, अतः, अतः, अतः, अतः, अतः ।

: १ - २ : अथान्नं, राजन्ना मन्त्रिणे वदं ॥१॥

— १ नमो भगवते वासुदेवाय ।

नमो भगवते वासुदेवाय ॥२॥

॥ ५॥ अथ नमो, नमो पातहर हस्तिम् ।

१०१ : श्री-हर वरे, न न नागपुरे वरे ॥३॥

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

नानाद्वयार्थं निरुद्धं, दानात्मजो विष्णुः जनः प्रधानः ॥४॥

• १५० नववि तन्त्रजालन जीर्ण.

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

ਸ੍ਰੀ ਮਾਤਾ ਸਮਾਜ : ਗੁਪਤਗਣਨਾਂ ਦੀ

तौं नमः हरि पाद मंगेज नीरे ॥५॥

३३. ५५. शक्तिः शक्तिः गोपाल मृपुरात्मज.

॥ १० ॥ नमो नम्रे इत्ययं भाटार्ग्यं महत् ॥६॥

मन्त्रः सत्त्वः सत्त्वः सत्त्वः सत्त्वः सत्त्वः ।

॥३॥

इति च भाष्ये गते स्वयन्त्या द्रव्य दायिनः ।

पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥ पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

प्र. १० - यथावेना परिणता जहन्नेन न ।

• एतन्मन्त्रं मन्त्रभाष्यं ज्ञातं वैदुषिक् यथा ॥६॥

ॐ नमः शिवाय । इति श्रीगणेशपूजा ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतायां अष्टादशोऽध्यायः ॥१०॥

॥ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ मित्रे, मां मित्रे कालगुणे

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

१०. मन्त्राणां विना विष्णुना देवानयोद्धान्कान्

१७ अथ कः सप्रियान् वदन् मनो वो मुदम् ॥११॥

[illegible]

स्वशक्त्या द्रव्यमेकीकृत्य भाडार द्रव्ये मेलयत्वा श्री मुरलीधर विमलेश्वरयो. जीर्णं देवालयोद्धारः कृत पूर्व सकीर्णतां दृष्ट्वा नवीनां तुतगृहीत्वा हरे मन्दिरोद्भूत रचनाभिरकारि । श्री शंकर कुण्डोपि वा प्रतोल्या भुव गृहीत्वा पूर्व सकीर्णोविस्तीर्णोद्भूत तरः कृतः पच महाजनानां महती श्रद्धा उद्धरणे मन्दिर रचनाया उपरितनो श्री कृष्ण प्रेमवात्र वेषणव त्रिपुरदासात्मज गदाधर पुत्रो नारायणदास लोह्या ज्ञाति सूत्रधार अजमेरी पोर महमदः शुभ भवतु ॥ सर्व महाजन संघश्चिर जीवतु ॥ लिखावत मिश्र जोद्धा ॥ श्री ॥

श्री ओझा जी ने अपने जोधपुर राज्य का इतिहास भाग १ पृष्ठ ४१ में लिखा है—“यहाँ हिन्दू मन्दिर बहुत हैं किन्तु उनमें से अधिकांश नये हैं, प्राचीनता की दृष्टि से एक ही हाते में पास-पास बने हुए शिव और मुरली के मन्दिर महत्व के हैं । इनके स्तम्भ आदि पुराने हैं, शेष काम नया है । शिव मन्दिर के फर्श से २५ सौदी नीचे उतरने पर शिवलिंग आता है । तीसरा वरमाया का मन्दिर है जो योगिनी का माना जाता है, इसके प्राचीन स्तम्भों पर सुन्दर खुदाई का काम है । इनमें से तीन पर लेख खुदे हुये थे जिनमें से एक तो विगाड़ दिया गया है, शेष दो पर स १६१८ जेठ वदि १३ और स १६५६ चैत्र सुदि १३ के लेख हैं ।

“अजमेर पर मुसलमानों का आधिपत्य होने के कुछ समय बाद नागौर पर भी उनका अधिकार होगया, तब से प्राचीन मन्दिर आदि नष्ट किये जाने लगे ।”

नागौर के प्रसिद्ध बलीधर वाले मन्दिर का चित्र ‘नागौर १९६५’ के पृष्ठ २६ में छापा है । अब उपरोक्त मन्दिर की प्रशस्ति का सारांश नीचे दिया जा रहा हैः—

श्री मुरलीधर और शंकर को नमस्कार हो । नागपुर स्थित लक्ष्मोपति मुरलीधर और भगवान शंकर भक्तों के सकल मनोरथ पूर्ण करने वाले, सर्व पापों का हरण करने वाले, भुक्ति और मुक्ति प्रदान करने वाले हैं, वे नागपुर निवासियों का सर्वदा कल्याण करें और पुत्र, लक्ष्मी, राज्यादि प्रदान करें ।

पूर्व में विष्णुदास के पुत्र नरसिंह ने विमलेश्वर के मन्दिर को पुरातन देखकर इनका जीर्णोद्धार करवाया था, वह भी काल के प्रभाव से अति जीर्ण होगया । इसका पुनः उद्धार करवाना आवश्यक था, किन्तु यह कार्य बहुत द्रव्य की अपेक्षा रखता था, इसलिये त्रिपुरात्मज गोपाल ने ‘हरिपादसरोजतीरे’ (बुन्दान) में कोश एकत्रित किया ।

लोहिया जातीय नरश्रेष्ठ त्रिपुर सुत गोपाल ने महाजनो के सहयोग से यहा द्रव्य-भण्डार करवाया । अहिपुर निवासी वंशज भक्तों, और मुख्य पक्षों ने भी अपनी शक्ति के अनुसार इस कार्य में द्रव्य दिया ।

जिस प्रकार श्री कृष्ण ने विदुर के यहा ‘दाक’ को प्रेम से स्वीकार किया था वैसे ही हरी और शंकर ने केवल भक्तों द्वारा प्रदत्त धन ही स्वीकार किया, अन्य भक्तों का धन स्वीकार नहीं किया ।

संवत् १९६६ श्रावण (इपु) शुक्ला १० गुरुवार को महाजनो ने जैन मन्दिर का उद्धार किया । संवत् १९७० फाल्गुन सुदि ५ गुरुवार को भगवान विष्णु की प्रतिष्ठा की । यह नागपुर का देवालय

होने लगे, तुम जानकर मन्दिर के उद्धारको को हर्ष

सन् १३ बीमराह मृतमिरा स्थान में, पानिमाह, श्री तूरदी महम्मद
मन्दिर के नाम में देवालय के गलत की स्थापना हुई। शुभ ।

जो, जे मन्दिर मन्दिर जनो (नियमक्तो) को बुलाकर, अपनी शक्ति के
मन्दिर मन्दिर को मिलाकर मुरलीधर तथा विमलेश्वर के जोड़ी देवालयो
की मन्दिरों के मन्दिर नवीन भूमि सारीदकर हरि के मन्दिर की मन्दिर
की मन्दिरों का उमको भी प्रतीति की जमीन ग्रहण कर विस्तृत एवं
जो उद्धार एवं रचना में महाजन पत्रों को महती श्रद्धा है जिसका मुख्य
मन्दिर मन्दिर निपुरदान का पौत्र, गदाधर का पुत्र नारायणदास;
म ही। ममस्त महाजन मन चिरकाल जीवित रहो। मिश्र जोधा ने यह

वेटी-तीजो बेर रिणु में राखि राडि करि रहीयो ॥
बाह्रमेर आयो पाधरो साहिजादे सोच विचारीयो ।
दुरंगने पाटण रापि ने साहिजादो पातसाह पासि पवारियो ।११५।

इनके अतिरिक्त विभिन्न पत्रों के शीर्ष, पाद, वाम अथवा दक्षिण पादो के हासियों में लगभग ४७ पद सईकी के और भी प्राप्त हैं ।

सईकी की अन्तिम पुष्पिका निम्न प्रकार है—

इति अठारमा सईका रो सईकी सम्पूर्णं

लिपि कृता कथिता वाचक जयचंद्रेण श्री रस्तु लेखकस्य

सम्मति

कहते हैं कोई एक अनाथ बालक अपनी ही दृष्टि में हीन बना असहाय-सा धूम-फिर रहा था । दैवयोग की बात ! किसी व्यक्ति ने उसे बताया—वह राजकुमार है—प्रतुल धन-राशि का स्वामी । प्रमाण स्वरूप उसने एक खडहर भी दिखाया, जो उसके राजमहल का भग्नावशेष था । खोदने पर जो धनराशि मिली, वह असीम थी ।

भारतीय भाषाओं का जनसाहित्य भी, फिर चाहे वह प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन, अमूल्य है, अद्भुत है; किन्तु अब तक वह प्रकाश में नहीं आया है । प्रकाश में आने पर उप-रोक्त राजकुमार की भाँति ही हम भी गौरवान्वित हो सकते हैं ।

यह सन्तोष का विषय है कि अब विद्वानों का ध्यान शोध कार्य की ओर गया है और वह दिन दूर नहीं है जब विभिन्न जनपदीय भाषाएँ इस असीम ज्ञानराशि को पाकर अपार महिमा से मण्डित बनेंगी ।

‘मरु-भारती’ यही कार्य कर रही है । यह सीमाव्य की बात है कि उसे समय-विद्वानों का सहयोग प्राप्त है । मेरा विश्वास है कि मरु-भारती अपने शोध कार्यों द्वारा राजस्थानी साहित्य की छिपी हुई ज्ञानराशि को जनता के सम्मुख प्रस्तुत करने में सफल होगी ।

—श्रीरामदेवर दयानन्द दुवे

द्यतन अप्राप्त वंशावली

—दीनजी कृष्ण मोहन

गल्प चक्रवर्त्या से ग्रन्थ को छद्म या तीन सौ
 ११ मानना नदिव्य नहीं है । ग्रंथ में नवत्
 १२ के ऐतिहासिक पुरुषों का परिचय
 १३ १८२५ के पदचात्र की किमी भी घा
 १४ यन्त्रि का उत्प्रेष गुटके में नहीं हुआ है ।

❖ गीत ❖

रुद्र	रो	रायपाल	मोहणघर	सुभद्र
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)
दीनद	मादुन	गहन	देवो	रो
(६)	(७)	(८)	(९)	(१०)
मरमी	महेराज	श्रीचन्द	भोज	
(१०)	(११)	(१२)	(१३)	
रात्रु	यस्ता	अकलवले	मोहण	
(१४)	(१५)		(१६)	
रावन	नगा	मूजा	अचना	वडम
(१७)	(१८)	(१९)	(२०)	(२१)
नेम	वश	जमन	तणा	नीर
				चढावे
				(२२)

आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया ने अपनी
 में जमन का मोहण जी की २० वी पी
 बताया है जो प्रस्तुत गीत में भी २० वी पी
 नैगमी के पिता का नाम है । इसके अतिरि
 ने नैगमी के जीवनवृत्त में लिखा है कि "१
 गठोद राज्य की नींव डालने वाले राव स

प्रकाशक-राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठा

३—'मुहना नैगमी गी त्यात', पृष्ठ २६, १

सम्पादक-आचार्य बदरीप्रसाद, साकरिया

प्रकाशक-राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठा

उनके पुत्र राव रामस्थान हुए । राव रामस्थान के इमने स्पष्ट है कि प्रस्तुत गीत में मदिग्धता का कोई पौत्र राव रामपाल हुए ।^१ लेखक ने भूमिका में राव स्थान नहीं है । रामपाल के पिता का नाम नहीं दिया, जो कि राव नंगुसी के पूर्वजों के सम्बन्ध में जितना भी धूहड है । प्रस्तुत गीत में राव रामपाल के पिता का विवरण प्राप्त है उससे थोड़ी भी अधिक जानकारी नाम धूहड तथा पुत्र का नाम मोहण दिया है जो प्रस्तुत गीत से उपलब्ध हो सकेगी तो मैं अपने आचार्य की भूमिका से पूर्ण रूप से मेल खाता है । परिश्रम को सफल समझूँगी ।

१—मुहता नंगुसी की ख्यात भाग ४, पृष्ठ २५ ।

सम्पादक—आचार्य बदरीप्रसाद साकरिया ।

प्रकाशक—राजस्थान प्राच्य विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर ।

सम्मति

मरु-भारती अपने ध्येय की पूर्ति करने में सदा जागरूक रही है । लोक-गीत, लोक-कथाओं तथा लोकोक्तियों का विशिष्ट संग्रह समय-समय पर पत्रिका द्वारा प्रकाशित हुआ है । कुछ प्रसिद्ध राजस्थानी कथाएँ तथा राजस्थानी स्थापत्य-कला, चित्र-कला तथा मूर्ति-कला पर भी यदा-कदा लेख छपते रहे हैं । राजस्थान के देव-मन्दिरों, राज-प्रमादों में, पुस्तकालयों में तथा जैन पुस्तक-भण्डारों में राजस्थान की पुरातन सम्पदा आज भी बहुत कुछ सुरक्षित है, परन्तु कुछ समय से लुके-छिपे ये अमूल्य रत्न विदेशियों द्वारा देश से बाहर जाने लगे हैं । यदि इस सामग्री का यथासमय उपयोग न हो सका तो सदा के लिए हम इसे खो बैठेंगे ।

राजस्थान की वीर-गाथाओं का भण्डार भी बृहत् है । कर्नल टॉड ने कुछ मंज तीन भागों में प्रकाशित किये हैं । अन्य प्रकाशन भी कुछ हैं परन्तु अभी अनेक गाथाएँ अप्रकाशित हैं । राजस्थान के अनेक ग्राम वीर-गाथाओं से श्रोत-श्रोत हैं । इनका संग्रह वयोवृद्ध ग्रामीणों, नागरिकों, चारणों तथा कथावाचकों द्वारा न हो सका तो वे गाथाएँ सदा के लिए लोप हो जाएँगी ।

मरु-भारती इस क्षति से देश को बचाने में सहायक हो सकती है । स्थापत्य-कला, मूर्ति कला, चित्र-कला तथा वीर-गाथाओं के विघोणाङ्क निकालने का प्रयत्न होना चाहिए तथा अन्य अङ्गों में भी इन विशेष स्तम्भों में लेखों का प्रकाशन किया जाना चाहिए ।

—श्री मुकदेव पाण्डे

नैनीताल, (३० प्र०)

रसेन कथा

— श्री भंडारलाल नाहटा

मिना, प्रभुन नेम में एक ऐसी ही कथा प्रकाशित हो रही है जो जिनपूजा और दान का महान् और विशिष्ट दान बतलाने के लिए रची गई है। अन्य कथाओं में पूर्व जन्म का सम्बन्ध प्रायः पीछे जोड़ा जाता है पर इस कथा का वृत्तान्त पहले ही जोड़ दिया गया है। इसकी आग कर देने के बाद लोक-कथा का विस्तृत रूप निरूपित होता है। अनेक कीतूहल-घटना और आश्चर्यजनक वस्तुओं और घटनाओं से यह कथा ओन-प्रोत है। कथानक रूढ़ियों का इतना वास्तव उसे लोक-कथा मिथ्य करती है।

कथानक-रूढ़ियाँ—

अमरमेत वयरमेन दो मने भाई थे, अपनी सीतेली माता के दुःप्रपच ने इन्हे निर्वासन होकर जंगलों में भटकना पड़ना है। सीतामय से वे राजा की आज्ञा मान पाने की होने पर भी चाण्डाल की मज्जाखना में दब पाने हैं। जंगल में उन्हें भुव-भुकी के द्वारा अट्टन महागथा—अनोवे आम्रकल मिलते हैं। वयर-मेन को तो कुट्टिनी द्वारा दो बार ठगा गया पर वह आसक्ति भी उसके लिए सक्ति का ही कारण बनी। देवाधिष्ठित या विद्याधरो के लगाए हुए आम्रकल मित्रता विविध प्रभाव दिखाते हैं। इसी प्रकार कथा के भटकाने पर पाँच सी रत्नों का गिरना, पादुका धारण कर आजात मार्ग से उड़ना, दंड का भी अमोघ प्रभाव बनाना इत्यादि अमंभव बातें लोक-कथा के दिग्ग महज संभव तत्त्व हैं। कथाओं को मुखचिपूर्ण व कीतूहल-वर्द्धक बनाने के लिए ऐसी अनेक कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग लोक-कथाओं के लिए अनिवार्य है। इन मुँघने में मनुष्य से गया व गयी बन जाना हमारे दून व मृत्तने में पुनः मानव देह प्राप्त हो जाना भी

कम कीतुहल-वद्ध'क नहीं हैं। राजा के मरने पर पंच दिव्यो का प्रकट करना और नये राजा का चुनाव उसके द्वारा होने की बात अनेक कथाओं द्वारा समर्पित कथारूढ़ि है। वेदया व कुट्टिनी का प्रसंग तो उनके स्वभाव-जन्य दोष के परिचायक हैं।

प्राचीनता—

यह कथा पर्याप्त प्राचीन प्रतीत होती है। प्राकृत, संस्कृत के कई ग्रंथों में इसका उपलब्ध होना परवर्ती रासो से सिद्ध है पर उनमें सबसे प्राचीन ग्रंथ कीनमा है यह अभी तक निर्णयाधीन है। कवि जिनहर्ष ने अमरसेन वयरसेन रास के अन्त में इस रचना का आधार पार्श्वनाथ चरित्र बतलाया है। पर पार्श्वनाथ चरित्र कई हैं, उनमें से किस के द्वारा रचित कोन से पार्श्वनाथ चरित्र में यह कथा है, यह अन्वेष्टनीय है। कई अन्य जैन कवियों ने इस कथा सम्बन्धी अपनी रचना का आधार पुष्पमाला और प्रतिक्रमण सूत्रवृत्ति का

उल्लेख किया है। पुष्पमाला प्रकरण मूल तो प्राकृत में है और तेरहवीं शताब्दी की रचना है। मूल ग्रंथ में तो उनका नामोल्लेख जैसा हो होगा, पूरी कथा नो टीकाकारो ने दी है और टीकाएँ भी कई हैं। प्रतिक्रमण सूत्रवृत्ति भी कई विद्वानों द्वारा रचित मिलती है, उनमें से किमके रचित ग्रन्थ में यह टीका है अन्वेष्टनीय है। तेरहवीं शताब्दी से पूर्व भी यह लोक-कथा के रूप में प्रसिद्ध रही होगी, जिसका उपयोग जिन-पूजा और दान के माहात्म्य बतलाने के लिए जैन विद्वानों ने किया है। प्राकृत, संस्कृत रचनाओं को छोड़ भी दे पर केवल राजस्थान रास काव्य ही इस कथा के सम्बन्ध में १० जैन कवियों के रचित मिलते हैं, इससे इसकी लोकप्रियता स्वयंसिद्ध है। सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी अर्थात् पीने दो सौ वर्षों में ही १० राजस्थानी काव्य इस कथा को लेकर बनाये गए जिनकी सूची नीचे दी जा रही है।

१—अमरसेन वयरसेन चौपाई गा० २६३ सं० १५६४ राजशील ।

२—अमरसेन वयरसेन रास सं० १६४० कमल हर्ष ।

३—अमरसेन वयरसेन प्रबोध सं० १६४४ संग्रामपुर, रंगकुशल ।

४—अमरसेन वयरसेन आख्यान गा० ५११ न० १६७६ सध विजय ।

५—अमरसेन वयरसेन चौ० सं० १७०० जेसनमेर, जयरग ।

६—अमरसेन वयरसेन चौ० सं० १७०६ सीतपुर, दयानार ।

७—अमरसेन वयरसेन रास सं० १७२४ सरमा, धर्मवर्द्धन ।

८—अमरसेन वयरसेन रास सं० १७४४ अहमदनगर, तेजपाल ।

९—अमरसेन वयरसेन रास सं० १७४४ पाटण, गा० ४६३, जिनहर्ष ।

१०—अमरसेन वयरसेन रास सं० १७६८, जीवनानगर ।

इनमें से कवि जिनहर्ष रचित रास २६ टालो में है। इसी का कथानार आगे दिया जा रहा है। अन्य कुछ रास तीन या चार खंडों में विभक्त हैं।

61-10311-1

[illegible]

रास में प्रयुक्त देशियों की सूची

१-चउपईनी, २-अलबेलानी, ३-घन २ सप्रति
माचउ राजा, ४-कपूर हुवइ अति ऊजलउरे, ५ ईडर
आवा आविली रे, ६ घन घन श्री रिविराज अनाथी ७
घउलइ भार मरा छा राज, ये तउ बात करउ छउ
८-कोउलउ परवत धूँधल उ रे लो, ९-महर दिल्ली
ना वाग मइ, दोइ नारिग पक्रीया हे लो १०-माना
दरजगु रो, ११-राजा रायसथ ना सोहलानी, १२-
चतुर मनेही मोहना, १३-महारा आतमराम किणि
दिन मेथुंजि जासुं (राग-परजीयउ), १४-ढाल-
रमीयानी, १५-रातढोया रमीनइ रे किहां थी आधीया
रे १६ जाटणी ना गीत नी, १७-प्राज प्रांगणडइ
पिउ रमीयउ, १८-नणदल विदली ल्यउ, १९-गलीग-
रउ माजण मित्या घण वारी, २०-घणारी सोरठी,
२१-मोहन मुंदरी ने गयउ, २२-नइणां मेनउ दे रे
२३-राजा जउ मिनइ, २४-हरीया मन लागउ,
२५-जीहो मियिला नयरी नठ घणी, ६-मोरी
बहिनी यहि काइ प्रभरिज बात ।

पद्य सप्त्या—

प्रत्येक ढाल के प्रारंभ में दोहे हैं, दोहा व ढालों की मध्या क्रमिक चली आती है जो ४६३ है। कवि ने "च्यारिमउ प्रेगठि एहनी गाया ढाल छर्चाम" अंत में लिख कर रास की छंद-मध्या बतला दी है।

वर्णन —

कहावत प्रसिद्ध है कि 'सीत तो मट्टी की बुरी' कवि ने इस प्रकार लिखा है—

'भीण तणी जउ सउकि करीनइ वार ऊपरि लेइ बांधइ रे ।
ढोपइ करि नइ वल्ल विगाडइ, वयर इसी परि साधइ रे ॥६७॥
मुइ तउ परि हियइइ वइसइ, दोष करइ दुख आपइ रे ।
तउ जीवती किम दुख नापइ, कत तणउ वित्त कापइरे ॥६८॥'

वेश्या का स्वार्थी पना —

छेद दिखावइ प्रीति न लावइ, वित्तइ वित्त लगावइ
वेगा तइ दुरजन सारीखा, स्वारथ अधिक सुहावइ ॥२२५॥

अब कवि द्वारा वन-वर्णन, पइ ऋतु वर्णन और प्रसंगवश स्मशान भूमिका जो चित्रण किया गया है, उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जाता है—

चलता महावन मां पड्या रे लो, वृक्ष तणा जिहां वृंद रे भा०
अधारउ व्यापी रह्यउ रे लो, दीसइ नही रवि चंदो रे भा० ॥३२॥ जो०
ताल हुताल एकइ दिसइ रे लो, अर्जुन साल प्रियाल रे ॥भा०॥
नाग प्रियाग लविग नारिग ना रे लो, चदन अगर तमाल रे ॥भा०॥३३॥
एक दिसइ आवा फल्या रेलो, दाडिम द्राख असोक रे ॥भा०॥
पाडल चंपक फूलिया रे लो, जोता जायइ लोक रे ॥भा०॥३४॥
किहां पिचुमद हरीतकी रे लो, बड पीपल मंदार रे ॥भा०॥
सरल सकल मदनासना रे लो, धव तरुपर कवनार रे ॥भा०॥३४॥

लोकोक्तियाँ—

जिनहर्ष महाकवि थे, इन्होंने अपनी कृतियों में लोकोक्ति और मुहावरों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। प्रस्तुत अमरसेन वररमेन रास में भी कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

"नीचोवइ धोवइ किमुं नागी जे परिहार ॥५८॥"

[नागी कइ धोवै'र काइ निचोवै ? राक्षसानी कहावत]

'जीवंता कल्याण छइ, वली भोगव स्यउगज'

[जीवन्तरो भद्रशतानि पदगति]

१००॥३६॥

अनेक जैन कवियों की भाँति कविद्वय जिनहर्ष ने भी सरल भाषा में और सहज गति से चरित-जीवन की कथा को गतिशील बनाया है। जैन कविधर्मकारा मावनी और परिणति से आल्हादित हो कर मोक्ष के उद्देश्य विद्वत्ता प्रदर्शन न होकर कथाओं के माध्यम से मानव जीवन को उन्नत बनाने का ही प्रधान रूप से रहा है। इसलिए अनावश्यक विस्तार और छद्मालंकारों की छटा उनमें विशेष नहीं पाई जाती पर जनता के लिए उनकी रचनाएँ पर्याप्त लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। उनकी रचनाओं से हजारों लाखों व्यक्तियों ने मत्प्रेरणा पा कर अपने जीवन को आदर्श एवं उन्नत बनाया है। अन्त में कवि ने जो प्रशस्ति दी है उसमें इस रचना का आधार, रचना संवत्, स्थान अपने गच्छ एवं गुरु का परिचय तथा पद्य-संख्या की आवश्यक जानकारी दे दी है। कवि की प्रयुक्त देगियों में कई तो जैन कवियों के प्रसिद्ध ढालों की हैं पर जो लोक-गीतों की देशियाँ हैं, उनकी और पाठकों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया जाता है। 'माना दरजण' और राजा रायसिंह के सोहले का कौनसा लोक-गीत था, इसकी खोज की जानी चाहिए।

रास-सार

भरत क्षेत्र में रिषभ नगर नामक एक समृद्ध नगर था जहाँ कुश नामक राजा के राज्य में अभयकर सेठ निवास करता था। यह सेठ बड़ा ही धर्मात्मा, विवेकी और दानी था। पुण्योदय से उसके सेठानी कुमलवती भी सदगुणी और शीलवती थी। इस सेठ के यहाँ दो नोकर रहते थे जो बहुत ही सरल स्वभावी और भले थे। एक तो घर का सारा काम करता और दूसरा गोधन चराता था। एक दिन रात्रि के समय वे दोनों परस्पर बातें करने लगे कि अपने सेठ-स्वामी जितने धर्मात्मा हैं, इन्होंने पूर्व जन्म में सुकृत किया है जिससे यहाँ सुख है और परभव के लिए भी भवन अर्पित कर रहे हैं। अपने तो पुण्यहीन हैं, व्यर्थ ही घोर वृक्ष की

भाँति मानव-भव निष्फल हो रहे हैं। उन उभय भृत्यों की वार्त्तालाप सेठ के कर्णगोचर हुआ तो वह इनकी बातों से बहुत दुःखित हो गया कि ये दोनों सरल और धर्म प्राप्ति के योग्य पात्र हैं। सेठ के मन में नोकरों के प्रति इस वार्त्तालाप से प्रेम और महानुभूति बढ़ गई।

एक दिन चोमासी पर्व के अवसर पर सेठ ने इन्हें पुष्प देते हुए जिन-पूजा के लिए प्रेरित किया। भृत्य ने कहा—जिनके पुष्प हैं, उन्हें ही इसका फल होगा। सेठ के आग्रह पर भी जब उन्होंने पुष्प नहीं लिए तो सेठ इन्हें गुरु महाराज के पास लाया। गुरु महाराज ने उपदेश दिया कि जिनेश्वर की अष्ट प्रकारी पूजा मोक्ष-सुखदायी है। भावपूर्वक यदि एक भी पुष्प प्रभु के चरणों में चढ़ाया जाय तो वह प्रभु के समक्ष हो सकती है, प्रभु की यही तो वढ़ाई है। गोपाल ने कहा—मेरे पास बीस कीड़ी हैं। गुरु महाराज ने कहा—इसी द्रव्य के द्वारा पुष्प पूजा कर तुम धन-गुण लाभ प्राप्त कर सकते हो। उन्होंने एक दृष्टान्त दिया—एक नगर में एक बुढ़िया रहती थी जिस का नाम दुर्गति था। एक बार वह वन में काष्ठ की भारी लाने के लिए गई और वहाँ जानी मुनिराज का प्रवचन सुनने बैठ गई। मुनिराज ने कहा—उत्कट भावों में जिनेश्वर की पुष्पादि से पूजा करने वाले को मुसीबतें सहज उपलब्धि होती हैं। बुढ़िया ने लकड़ी की भारी लाने जाते हुए सिन्दुवार के फूल चुनकर जिन-पूजाएँ एकत्र कर लिये। वह रास्ते चलते हुए विचारने लगी—मैं हीनपुण्या हूँ, पूर्व भव में जिनेश्वर की पूजा नहीं की अतः यह विपन्न-वस्था भोगनी पड़ती है। मैंने सारा जीवन व्यर्थ गँवाया, जननी की दन मास भारों भारों और भव पृथ्वी को भारभूत किया। अब यह भारी बैजू गो पीछे और पहले जिनालय जाकर प्रभु पूजा के द्वारा अपना जीवन नफल करूँगी। उन प्रकार भावना भाती हुई भूखी-प्यासी पकी-माँदी होने पर

[illegible]

रानी की झूठी शिकायतें गुन कर गजा अपने पुत्रों पर अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उसने तत्काल बाण्डाल को बुला कर आदेश दिया—दोनों कुमार अश्वारूढ होकर घूमने गए हैं, तुम गुरंत उसका सम्भर काट कर

लाओ और मुझे दिखाओ। इसमें अन्यथा न हो। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारा सिर घड़ से अलग कर दिया जायगा। चण्ड चाण्डाल ने ज्यों ही राजाज्ञा सुनी, वह अवाक् रह गया। वह सोचने लगा—राजा अपने प्राणश्रिय, कुलदीपक गुणवान् पुत्रों को क्यों मरवा रहा है? वह तुरत कुमारों के पास जंगल में जा कर मिला और राजाज्ञा सुनाई। कुमारों ने कहा—तुम प्रसन्नतापूर्वक पिताजी की आज्ञा का पालन करो। चण्ड ने कहा—आप लोगों को देख कर मेरा हृदय आल्हादित होता है। संभवतः किसी दुर्जन के द्वारा कान भरे जाने पर राजा ने अविचारपूर्ण आज्ञा दी है पर मेरे से यह दुष्कृत्य नहीं होगा। मैं किसी भी प्रकार प्रपच करके अपने प्राण बचा लूंगा, आप दोनों यहाँ से विदेश चले जाइये। जीवित रहने में ही कल्याण है।

अमरसेन वयरसेन अपने छोड़े चण्ड को सौंप कर पैदल ही वन के मार्ग में चल पड़े। चण्ड ने चतुर कालाकार से दो मिट्टी के मस्तक बनवा कर उन पर ऐसा रंग करवाया कि देखने में ठीक कुमारों जैसे ही लगे। उसने राजा को दूर से मस्तक दिखा कर घोड़े सौंप दिये। राजा ने क्रोध पूर्वक कहा—इन्हें ले जाकर कहीं गाड़ दो। चण्ड अपनी चतुराई में सफल हो गया।

अब अमरसेन, वयरसेन जिस घनघोर वन में चल रहे थे, सूर्य का प्रकाश भी मुश्किल से पहुँचता था। ताल, तमाल, अर्जुन, हताल, साल, नाग, प्रियगु, लवंग, अमर, चंदनादि के वृक्षों से सुशोभित वन में कहीं आस्र, दाडिम, द्राक्षा, अशोक, बड़, पीपल के वृक्ष थे तो कहीं पाडल, चपक पिचुमंद, मदार, कचनार आदि के वृक्ष फले-फूले थे। दोनों भ्राता एक आस्र वृक्ष के नीचे जाकर बैठे। उन्होंने फलाहार करके नदी के जल से प्यास बुझाई और सूर्यास्त होने पर वही वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। वयरसेन ने पूछा

कि—अपना कोई अपराध नहीं, फिर पिताजी के रुष्ट होने का क्या कारण है? अमरसेन ने कहा—ठीक नो नहीं जानता पर विमाता ने ही झूठे कान भरे होंगे। वयरसेन ने कहा—पिता जी ने मत्स्य मान लिया? अमरसेन ने कहा—त्रिया चरित्र के आगे अमभव भी संभव हो जाता है, खैर हमें तो उतकार ही मानना चाहिए कि देशाटन, विविध दर्शन और स्वावलंबन का अवसर प्राप्त हुआ। इस प्रकार बात करते-करते अमरसेन को नौद आ गई तो वयरसेन सावधान हो कर सुरक्षा के लिए प्रहरी की भाँति बैठ गया।

जिस आस्र वृक्ष के नीचे दोनों भाई अवस्थित थे उसी वृक्ष पर शुक पक्षी का एक जोड़ा रहता था। शुक ने शुकी से कहा—आज अपने यहाँ कोई विपत्ति में पड़े हुए उत्तम पुरुष आये हुए मालूम देते हैं, हमें धिक्कार है कि इनका कोई उपकार नहीं कर सकते, क्योंकि स्वयं अधिकतर पक्षी हैं। शुकी ने कहा—प्राणेश्वर! आप ऐसा क्यों कहते हो। मूकूट पर्वत के नीचे वाले वन में विद्याधर के लगाये हुए जो दो आस्र वृक्ष हैं उन पर लगे लफों का प्रभाव अपन मुन चुके हैं कि एक को भक्षण करने वाला सातवें दिन राजा होता है और दूसरे को भक्षण करने वाले के मुँह में प्रति दिन पाँच सौ स्वर्ण-मुद्राएँ गिरती हैं। मत. आप एक-एक फल इन्हें ला दीजिये। शुक ने शुकी की उतकार बुद्धि की प्रशंसा की, फिर दोनों तत्काल वृक्ष में उड़ चले और थोड़ी देर में दो फल लाकर वयरसेन के सम्मुख रख दिये। इनमें बड़ा फल राज्य-दाता और लघु द्रव्य-दाता था, उसने यत्न पूर्वक अपनी शर में चाँद लिए। अमरसेन के उठने पर वयरसेन सो गया। सूर्योदय होते ही दोनों भाई उठ कर आगे चल पड़े और एक नरोवर के घाने पर शीचादि ने निवृत्त हुए। वयरसेन ने अपनी कमर में बंधे हुए फलों का निशान कर बड़ा फल अमरसेन को दिया और छोटा फल स्वयं उदरस्थ कर गया। उसने प्रतीति करने के लिए गुप्त स्थान में जाकर खम्भारा किया तो मुन्य में पान सौ स्वर्ण-मुद्राएँ आ गिरी।

[illegible][illegible]

महाशक्ति ने भाई की शीर्ष के लिए बहुतसे
पैसे दिये और उनके दिना पर दिनो ही दिनों
के दिन गये। महाशक्ति को जानबूझकर
महाशक्ति को भोजन न दिया गया। उनमें प्रतिदिन की
रुचि कम हो गई। वेदों को भी प्रभु घन
होने लगे। महाशक्ति को भोजन न दिया गया था।

[illegible]

बिना किसी व्यापार-भाजीविका के इतना धन कहाँ मे-
नाता है ? उसने कहा—हमारा तो घर भर रहा है।
हमें क्या प्रयोजन है पूछने का ? फिर भी कुट्टिनी के
प्राप्त होने से एक दिन वह वयरसेन से पूछ बैठी थीर
मुख वयरसेन ने अपने उदरस्य प्राप्त की सखी-सखी
बान बता दी। कुट्टिनी ने प्राप्त प्राप्त करने के
लिए एक दिन उसे विशेष मदिरा पिला कर बमन
करवाया। उसने प्राप्त की प्रशालन कर स्वयं भक्षण
किया, पर वह निष्कृत हो गया। प्राप्तकाल का प्रभाव
हट गया और वयरसेन के निर्धन होकर पर कुट्टिनी ने
उसे अपमानित कर घर से निकाल दिया।

म्यानभ्रष्ट वयरसेन इधर-उधर भटकता हुआ नगर
 के बाहर जा बैठा । जब वह लौटने लगा तो रात्रि में
 प्रतोली द्वार बंद हो चुके थे, अतः स्मशान भूमि स्थित
 किसी शून्य देवकुल में निवास करने लगा । उम
 भयंकर स्मशान में रात्रि में चार चोर आए और
 उत्तम वस्तुओं के बँटवारे के लिए परस्पर विवाद करने
 लगे । वयरसेन ने चोर संज्ञा में उन्हें पुकारा, अतः
 उन्होंने उसे चोर समझ कर अपने पास बुला लिया ।
 भगवे का कारण पूछने पर चोरो ने कहा—मित्र !
 हमारे नाम डंडा, कंया और चावडी, तीन वस्तुएँ हैं,
 और हम चार भाभी हैं । अतः बँटवारे का ही भगडा
 है । वयरसेन ने कहा—सामान्य वस्तुओं के लिए क्यों
 लड़ते हो ? उन्होंने कहा—तुम भोले हो, इनका
 माहात्म्य नहीं जानने । फिर उनके वितरण करने पर
 चोरो ने कहा—स्मशान में एक मिद्ध पुरुष रहता था,
 जिसकी किसी व्यक्ति ने छः मास पर्यन्त सेवा करके
 एक महा विद्या प्राप्त की, जब शिष्ट तीन वस्तुएँ भी
 देव में तुम्हें ही दूँगा, ऐसा आश्वासन दिया । हमने
 छः महीने तक यात लगाए रखा, अन्त में उस मिद्ध
 की मास्कर ये वस्तुएँ प्राप्त की हैं । अतः कथा की
 संवेगने पर पाँचमो रत्न गिरने हैं, दण्ड के प्रभाव में
 गम्भ का आघात नहीं लगता और चावडी की पहन
 कर प्रसीष्ट म्यान में आकाश मार्ग में गमन हो सकता

है। वयरसेन ने कहा—मैं बिना किसी विवाद के सहज बंटवारा कर देता हूँ। उसने तीनों वस्तु अपने पास रखकर कहा—मैं चारों दिशाओं में तीर फेंकता हूँ, जो पहले तीर लेकर आयेगा, उसे मैं वस्तु दूँगा। तीर लेने के लिए चले, दिशाओं में दौड़े। वयरसेन के पास तीनों वस्तुएँ थी ही, वह पैरों में चाखड़ी पहन कर उड़ गया, चोर लोग हाथ मलते रह गए। तीनों के बिगाड़ में चोथे का लाभ।

वयरसेन ने नगर में जाकर अपने विश्वस्त मित्र के पास तीनों वस्तुएँ रखदी और सुख से रहने लगा। अब उसके पास धन की कोई कमी नहीं थी, बड़े ठाठ से मीज करने लगा। वेश्या की दासी ने उसे वयरसेन के समृद्ध होने की खबर दी तो फिर वेश्या ने उसे प्राप्त करने के लिए डोरे डालने प्रारंभ किये। उसने वियोगिनी, कृशागी, श्वेतवसना का रूप देकर मागधिका को आगे किया और नाना प्रकार के फरव, उपालंभ आदि देते हुए चाटुकारितापूर्वक वयरसेन को पुनः अपने घर में आने को विवश कर दिया। वयरसेन उसका अन्त कपट जानता था कि वह मेरा धन लूटने के लिए ही मुझे घर ले जा रही है, पर उससे बदला लेने के उद्देश्य से वह उसके यहाँ चला गया और आनन्दपूर्वक रहने लगा।

: कुछ दिन बाद कुट्टिनी ने मागधिका से कहा—जब वह तुम्हारे प्रेम में अभिभूत हो, तब उससे धनागम का रहस्य पूछना। मागधिका ने कहा—अनर्गल धन तुम्हें मिलता है, फिर भी सन्तोष नहीं, मैं तो अब नहीं पूछूँगी, तुम स्वयं पूछ लो। कुट्टिनी ने एक दिन उसके निकट आकर चिकनी-चुपड़ी बातें कन्ते हुए द्रव्य-प्राप्ति का कारण पूछा तो वयरसेन ने कहा—माता जी ! मेरे पास देवाधिष्ठित चाखड़ी है जिसे पहन कर जहाँ कहीं से इच्छित घस ले आता हूँ। कुट्टिनी ने चाखड़ी प्राप्त करने के लिए वेदनाग्रस्त रोगिणी होने का कपट प्रपञ्च रचा और चीत्कार करने लगी। वयरसेन के पूछने पर उसने कहा—जब तुम चले गये

तब हमने अत्यन्त मानसिक कष्ट अनुभव किया और तुम्हें पुनः प्राप्त करने के लिए समुद्र मध्य स्थित कामदेव के मन्दिर की यात्रा बोली थी, अब तुम्हारे आ जाने पर भी सुदूर दुर्गम यात्रा न कर सकने के कारण पीड़ा पा रही हूँ। वयरसेन ने मन में सोचा—रही को समुद्र के बीच छोड़कर बदला लेने का अच्छा अवसर है, उसने प्रकट रूप से कहा—यह कोई कठिन कार्य नहीं। मैं तुम्हें यात्रा करा दूँगा। कुट्टिनी ने उसका आभार मानते हुए बड़ी प्रशंसा की।

वयरसेन बुढ़िया को कंधे पर बैठाकर चाखड़ी पहन कर गगन मार्ग से समुद्र पार कामदेव की यात्रार्थ ले गया। उसने बुढ़िया में देवगुह में जाकर यात्रा कर आने को कहा तो कुट्टिनी ने कहा—पुरुष प्रधान होते हैं अतः उन्हें ही पहले यात्रा करनी चाहिए। वयरसेन उसकी बात में आगया और चाखड़ी बाहर छोड़कर विशाल देवालय के प्रांगण में प्रविष्ट हो गया। वेश्या ने तत्काल चाखड़ी पहनी, और उड़कर अपने घर आगई। वयरसेन ने दाढ़र आते ही वेश्या को न देखकर समझ लिया कि रही को घोखा देकर मैंने मन ही मन उसे समुद्र में गिरा देना चाहा था, पर मुझे ही बुरे विचार के फलस्वरूप विपत्ति में पड़ना पड़ा।

वयरसेन जब वहाँ चिन्ताग्रस्त बैठा था तो एक विद्याधर ने प्राकाश मार्ग से आकर कारणपूर्वक उसकी चिन्ता का कारण पूछ कर हाल ज्ञात किया उसने कहा—तुम धैर्य रखो, मैं अभी तो कार्यवशा कही जा रहा हूँ, पन्द्रह दिन बाद आकर तुम्हें तुम्हारे न्यान पर पहुँचा दूँगा। तब तक तुम यहीं कामदेव की पूजा करते आनन्द से रहो। मन्दिर के पृष्ठ भाग में सर्वानुक उद्यान है, वहाँ झोड़ा करना, पर चैत्यालय के आगे वाले वृक्षों के पाम कभी मत जाना। विद्याधर उसे भोजन के लिए मोदक भी दे गया। वयरसेन विद्याधर की सीख के अनुसार आनन्दपूर्वक रहने लगा।

[illegible]

‘यनि लोभो न जनंथ्यो, लोभ नैव पण्डित्यजेत् ।
यनि लोभामिन्नूनात्मा, कृद्विनी गमभी भवेत् ॥’

राज-भवन में जाने के बाद राजा अमरसेन के कहने पर कुमार वयरसेन ने दूसरा पुष्प सुँघा कर कुट्टिनी को रासभी से पुनः मानवी बना दिया। वयरसेन को चाखड़ी वापस मिल गई, वेइया की बड़ी फजीहत हुई। राजा अमरसेन ने वयरसेन को युवराज पद दिया। फिर माता पिता को बुलाकर अमरसेन ने कहा—आप राज-सुख भोगें हम तो आपके आज्ञाकारी किकर की तरह काम करेंगे। सीतेली माँ जया को भी उन्होंने आदर पूर्वक कहा—माताजी, आपकी कृपा मे ही हमें इतना बड़ा राज्य मिला है। पुत्रों के विनय और गुणग्राहकता से उसकी सारी ईर्ष्या समाप्त हो गई और पश्चात्ताप से सारा कल्मष दूर हो गया। प्राण बचाने वाले चाडाल को उमकी जाति में प्रधान बना कर सत्कृत किया।

एक बार दोनों आता गवाक्ष में बैठे हुए थे तो उन्होंने भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए मुनिराज को देखा। उन्होंने सदाचार-मूर्ति मुनिराज को देख कर कहा—कहीं ऐसे महापुरुष को देखा स्मरण होता है। ऊहापोह करते हुए दोनों आताओं को अवधि प्रतिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। वे दोनों मुनिराज के पास वन्दनार्थ गए। उपदेश श्रवणानन्तर अमरसेन वयरसेन ने पूछा कि आपको देख कर हमारा चित्त बड़ा

आल्हादित होता है इसका क्या कारण है? मुनिराज ने अवधि ज्ञान का उपयोग दे कर कहा—पूर्व भव मे तुम दोनों ने २५ कीड़ी के पुष्पो से जिन-पूजा व मुनिराज को दान दे कर। महात्त शुभ फलदायक वृक्ष आरोपित किया है। उसी के फलस्वरूप इम भव में लब्धि सिद्धि और सपदा प्राप्त हुई है। पूर्व जन्म में मुनियो के प्रति भक्तिभाव रखने के कारण हमे देव कर प्रसन्नता अनुभव कर रहे हैं। अमरसेन-वयरसेन ने पूछा—हमे कब मोक्ष प्राप्त होगा? मुनिराज ने कहा—तुम लोग पूर्व पृथ्वी को भोग कर पाँच भव के बाद महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न हो कर मोक्ष पाओगे।

मुनिराज की देशना से बहत से जीवो ने प्रतिबोध पाया। अमरसेन वयरसेन भी विशेष रूप ने धार्मिक प्रवृत्ति करने लगे। उन्होंने—जिन-मन्दिर-निर्माण, तीर्थयात्रा, जिन पूजा, स्वधर्मों और माधु-भक्ति आदि सत्कार्यों मे प्रचुर द्रव्य व्यय करने के माय-माय दीन-दुखियो के लिए दानशालाएँ खोली। चिरकाल पर्यन्त श्रावक धर्म पानन कर मुनि दीक्षा ग्रहण की और नाना परीपह सहते हुए विशुद्ध चारित्र्य पानन कर अयुष्य पूर्ण होने पर ब्रह्मदेव लोक में उदात्त हुए फिर उपरि लिखित (५ मन) अवधि के पश्चात् महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष गए।

रास के अंत मे प्रशस्ति में कवि ने लिखा है कि—

युग वेद मुनि सिसि वच्छरइ, सुदि बीज फागुण मम ।
बुधवार पाटण नयर मइ, एह रच्यउ मइ रास ॥४६१॥
श्रीखरतर गच्छ पति जयउ, जिनचंद सूरि सूरि म ।
गरिण शाति हर्ष वाचक तणउ, कहइ जिनहर्ष मुसोन ॥४६२॥
श्री पाशर्वनाथ पसाउलइ, बीयउ रास जगीन ।
च्यारि सइ त्रेसठि एहनी, गाया ढाल छवीस ॥४६३॥

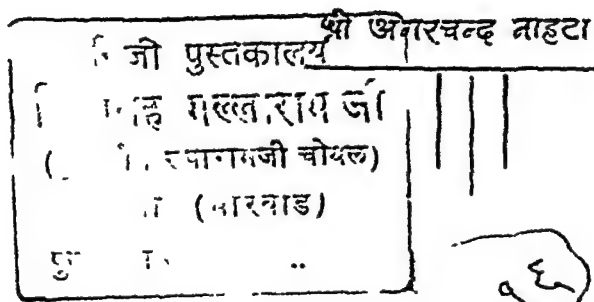
प्रमाण करइ । पछइ मार्तंग चीतवइ राजा नउ आदेश साचउ हूँ किम करूँ । एतउ महापुरुष । पचइकुमारनइ कहिवा लागउ एहवउ कर्म हूँ किम करूँ हूँ पिए पमाउ करि देशातरि तम्हे पहुचउ । हूँ चित्र कर पाहि ते माथा करावी । चीतरावी राजानइ देखाडिमो । इमउ साभली वेवइ बाधव देशातर भणी चाल्या । मार्तंग ते माया तिम करी राजानइ देखाड्या । हिव ते बात साभली मित्रइ माता हर्षी । हिवइ अमरसेन वइरसेने । मित्रेइ माता नउ विलसित जाणी आश्रयं जोवानइ काजि देशातर भणी चाल्या । इसइ सब्याइ कोइ एक अटवी माहि गया । रात्रिइ वृक्ष एक न लई वे वे बाधव सूता अटवी माहि भय जाणी । अमरसेन सूतउ वइरसेन पहरइ वइठउ । एतलइ प्रस्तावि सूडी भूमिका स्थित रुडा नइ कहिवा लगी । भो स्वामिन्, ए वेवइ महापुरुष अखिया छइ । वृक्ष तलइ सूता छइ । तेहनर काई उपगार कीजइ । सूडइ कह्यउ आपणि पक्षी एह-नइ केहउ उपगार कीजिमइ तिसइ सूडीइ कह्यउ । स्वामी, साभलउ । सुकूट शील तिहा विद्याधरे आपणी विद्यानी परीक्षा भणी विद्याइ अभिमत्री वे आवा वाव्या छइ । तेहनउ एक फलजको वडा आवा नी फल खाइ नेहनेइ सात दिन माहे राज हुइ । बहु आवा ना फल नइ भक्षणि प्रभाति कुकला करता पाच सइ दीनार पडइ । इसउ कही वेवइ पक्षी ऊडी आवा नी फलवे आणी । वयरसेन नइ उत्संगइ मूँष्या । पिए वइरसेन राज अणवाछतइ प्रभावि विण कहइ । वडउ फल अमरसेन नइ दीघउ लघु आपण पइ लीघउ । पछइ बीजइ दिन एकाकी वइसी । तलावि जाई कुरला करिवा लागउ । तेतलइ पाचसई दीनार मुखिहुतइ पडिया । तिबारइ पछी तिणइ द्रव्यइ भोजन वखादिक लेई सुखभोगवतां एकणि नगरि जाता सुख विससतां । वइरसेन नगरी माहि वेइया नइ धरि जाई राह्यउ । अमरसेन नगरी नइ परिसरि रहियो । एतलइ नगर नउ राजा मूँवउ । पंच दिव्य अषिबास्या अमरसेन काचन नगर नइ उद्यानि वनि वृक्ष मूलि सूतउ देखी

पंच दिव्य राजा अमरसेनि राजि वैसाड्यउ । वयरसेन कीतुकी हुंतउ । वेइया रइ धरे रह्यउ । भाईइ जोया-वियो पिए लाघउ नहीं । अण्यदा मागधिका कुट्टिनीइ वइरसेन व्यापार रहित धनव्यय करतउ दोली पूछयउ जउ प्रीयतम व्यापार विभइवडु खरिचव्यउकित पहुचइ छइ । मुख स्वभावइ आवा नउ भक्षण काहउ । जउ आभना भक्षण लगी पाचसइ दीनार नो प्राप्ति तिसे वेसास पमाडी वमनना प्रीष देई आभनकलनी गोठी पाछी वमावी । मुगघाई लीघी । पछइ वयरसेन निद्रव्य जाणी घर हुंती काह्यउ फल वेइयाइ लीघउ । तिसइ वयरसेन नगर छाडी उद्यान वलि विलस हूतउ आण्यउ । इसइ रात्रिइ ३ वस्तु चोरी च्यारि चोर भाग नइ कीघइ कलह करवा लाग्या । पिए जे तीन वस्तु अनइ च्यारि चोर ते भाग मेलि किम ही न पडइ । इसइ वयरसेन चोर ... जाइ चोर नई मित्यउ । कलह स्वरूप प्रछिवा लाग्या । ते कहिवा लाग्या । घनइ म्हे च्यारि चोर एक कंया लकुट पादुका ए वस्तु त्रिणि वहिची दिइ । वइरसेन कह्यउ । कउण प्रभाव वस्तु-नउ । ते कहिवा लाग्या । एक मित्र पुरुष तिणि छ मास ताई देवतानउ आराधन कीघउ । तीणि देवता तूठोइ ए त्रिणि वस्तु आपी । तेहनउ ए प्रभाव । कथा भाटकीइ तउ पाचमइ दीनार पडइ । लकुटनी प्रभाव तउ शन्न न लागइ ।

पाऊप्रा नइ प्रभावि आकाश गामिनी विद्या हुइ जिम आकाश गामिनी विद्या हुइ जिम आकाशि ऊडीइ । एहवउ प्रभाव साभली कुमारि काहइ मइ पुरा पूर्वइ योगी नुवेप पहिरियो नथो । ते एक बार कहउ तउ पहिरी जोउं । तीए कह्यउ एक बार पहिरि । पछइ कुमारि कंया पहिरी लकुटी हायि कीघउ पाउमा पवि चाल्या । अनइ कुमार आकाशि ऊडनउ । चोर बंच्या हुता यथा स्थानकि पहुंचता । वयरसेन वनी नीय वस्तु नइ प्रभाव नगर माहि भोग भोगवइ । बेने दिने तिणि कुट्टिनीइ वयरसेन भोग भोगवतउ देगी वली प्रपंच करी आपणइ घरइ घाण्यउ । देव

पुनः कुरु। मेइ नामिक लागउ हूँ तेहनइ पगइ यत-
 नी तिरि दहा मूँकी। तिरि वछ कहि तूँ घागउ
 तिम। कुमार कहइ मक्ष ना प्रमाइ तगो हु उहा
 घागउ। वेइया पूछइ। तुभ नइ मक्ष काइ दीधउ
 कुमार तहइ मुम्नइ औपधि दीधी। जिणि जरा
 जायइ गोरन आवइ। एहवइ वेइया लोभ लगी कहिवा
 नागो मुज नइ औपधि घापि। कुमारि तत्काल ते
 पूरा गूँघाड्या। तेतच मगधा फीडो रासभी यइ कुमार
 लहुट लेई रागभीइ चहुयउ। पछइ ऊमइ चउहटइ
 लहुटइ गृहइ। लोक मित्या कहइ। भइो कुमार मूँकि
 कुमार न मूँकइ। तेतलइ मवं वेइया पुकार करवा
 नागो। तेनइ तनार अन्यापराण करवा लाग। तिसई
 कुमार लहुटि ते तिम। हण्या जिम तीए जई राजा
 बीनइयउ। पछउ राजा मपरिवार ले कटक लेई जउ
 आथो। तउ श्रीलणियो भाई राजा पछइ प्रपच जाणी
 कुट्टिनी मूँनावी। वेवइ भाइ मित्या महा प्रमोद ऊप-
 नउ। पछउ माता पिता गाम हूता अणात्री गज
 करवा लाग। अन्यक्ष ते वेवइ गउलि वइठा मुनि
 मुम देखी जानो स्मरणजान ऊपनउ। जातिस्मरण
 उप— — — — — वाहिवा लाग। महात्माए
 अत्रिभ ज्ञानो विमेष पूर्वभव कहाउ। जउ माघु
 महात्मा नउ जे भवा तरइ दान दीधउ तेह लगी
 राज्य नइ फल पाग्यउ। अनइ ने पाके कउडेफून लेई
 जिन पूज्या। ते दिनइ प्रमाण पांच सइ दीनार नी
 भोग प्राप्ति हुई। फल बिहुनइ देव लोक नर भव
 नाई। भोगवी वी छठइ भवि पूर्वविदेहइ राज्य
 भोगवी नीगाग समयइ तु मोक्षनी प्राप्ति हुई। इमउ
 पूर्वभव नवम्बर माभली दान प्रभावजागी अनेक
 सूत्रकार करावी जिन चैत्य करावी सस क्षेत्रइ धन-
 वावी प्राणि कालि चारित्र लेई पाचमइ देवलोकि
 पट्टना। पूर्वोक्त क्रमहि महाविदेहइ मोक्ष जागइ।
 इणि रीति मुपात्रदान लगी जिम अमरमेन वहरमेन
 नइ मरन चउनी हुई। तिम बीजाई विवेकी मुपात्र
 दान लगी मपदा पामइ ॥ इति श्री अमरमेन वयरमेन
 पथा ॥ छ ॥

25



कच्छ में रचित पद्यवद्ध हिन्दी संगीत ग्रन्थ

संगीत भारत की प्राचीन विद्या या कला है। इसके सबंध में प्राकृत, मस्कृत, हिन्दी, कन्नड आदि भाषाओं में काफी साहित्य उपलब्ध है। मवत् १६०० से लेकर अब तक चार सौ वर्षों में पद्यवद्ध हिन्दी रचनाएँ भी पर्याप्त परिमाण में लिखी गईं पर वे अधिकांश अप्रकाशित हैं। मैंने कई वर्ष पूर्व रागमाला आदि संगीत विषयक हिन्दी रचनाओं का विवरण अपने लेख एवं गोज-रिपोर्ट में प्रकाशित किया था और हायरस में प्रकाशित 'संगीत' में भी इस विषय के साहित्य पर प्रकाश डालता रहा हूँ।

कच्छ जैसे अहिन्दी-भाषी प्रदेश में महाराव लखपत के समय में हिन्दी का उल्लेखनीय प्रचार हुआ। वहाँ ब्रजभाषा और काव्य की शिक्षा के लिये निःशुल्क विद्यालय राव लखपत ने गोलार्ध और जैन यति कनककुशल तथा कुवरकुशल को उस विद्यालय का आचार्य बनाया गया। इन दोनों गुरु शिष्यों ने ब्रजभाषा में कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं और महाराव लखपत व उनके आश्रित कवियों ने भी ब्रजभाषा में उल्लेखनीय साहित्य निर्माण किया है। वहाँ रचित कतिपय संगीत ग्रन्थों की सामग्री भी प्रवास में आई है, जिनमें से 'नुरतरगिनी' और 'मृदंग मोहरा' महाराव लखपत के रचित हैं और रागमाला जैन यति कुवरकुशल ने राव लखपत के लिए टीका सहित बनाई। इसी प्रकार आगे

कल्याणमन्वान पत्रिका

ग्रन्थ का उपसंहार इस प्रकार किया गया है —

पूरन रस जामे रहो, मोई रनिक सुजान ।

रजक मवके मनन को, मो रजक मुपदान ॥

रागादिक गोतादि मे, हाव भाव रम भेद ।

सबको नीको कर कहो, भावक लज्जन वेद ॥

तानसेन मत ग्रानके, भरतहि चित लगाये ।

सगीत मुछन आदि मय, दीनहि भेद बताये ॥

इति श्री सुरध्याय सुरतरंगिनी ग्रन्थ मगर्ण समाप्त ॥

श्री कल्याणमस्तु । श्रीरस्तु ।

श्री १८८६ ना वर्षे वैशाख मास शुक्ल पक्षे । प्रतिपद्याया तिथी नाम वामरे । लिखावित चिरजीव दिन-दिन अधिक प्रताप राउ श्री भारमल्लजी तस्यात्मज चिरजीवी राउ श्री देशलजी दिन दिन अधिक प्रताप, लिखित धारक प्रागजी हरजी आणी श्रीभुजनगर मध्ये ॥ श्री श्री श्री : ॥

इस ग्रन्थ में नादस्तुति के पश्चात् ब्रह्मशक्ति का संक्षिप्त निरूपण है और संगीत के लक्षण दिये गये हैं । संगीत कर्ताओं की परंपरा का उल्लेख कर लेने के बाद संगीत के भेद बताये गये हैं । “अथ उद्देश वर्णन प्रकरण” में शारीरिक सूत्र के अनुसार पांच तत्वों के स्वरूप का निरूपण है और योगके पट् चक्रों का भी वर्णन है । ‘नाडी वर्णन’, ‘नाद महिमा’ और ‘नाद उत्पत्ति’ आदि के पश्चात् राग-रागिनियों के लक्षण विस्तार में लिखे गये हैं । राग-रागिनियों के संवध में विभिन्न मतों का भी उल्लेख किया गया है । उदाहरण के लिये इस ग्रन्थ का ‘मेघ मल्लार’ विषयक विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

अथ मेघ—कामादेर कल्याण मिलि, पुनि सावत वसत ।

गावत मेघ सरूप को, मिलिके सत असत ॥

बडहरू मधुमाघ मिलि, सावत अरु सारग ।

गावत मेघ बनाइ के, चारो को ले सग ॥

सारग सोरठ जुगल मिलि, और चिरागी रग ।

ऐसे कहत मलार को, जे है गुनि सुदग ॥

द्वितीय मत—गोड बराबर कान्हरा, तीनों मिल के होय ।

त्यो बिलार गोसी सुमत, कहत गुनिजन लोय ॥

मग्न मोरु मुग्गिले, घोर प्रडाना संग ।
रामजन मुग्गिले रहे, यो गल्लार को भग ॥

इस गान में राम-गगिनिनी का स्वल्प-निरूपण भी बड़ा सरस है ।
गान में राम-प्रशंसा दिया जा रहा है ।-

गिरा पुनि के राज तर, इदीवर मे नेन ।
नाउ बाल वर मे ठिये, मुगिकनि हे मृदु मेन ॥
पुनि-पुनि जिय मे प्रगन भैरव को सुप देन ।
भैरव हो निय भैरवी, मृगदृग दीरघ नेन ॥

इस के रचना-काल को देखने से प्रतीत होता है कि इसकी रचना राम-गगिनिनी के यानी मुजराजापन्ना में ही की थी । इस ग्रन्थ के आदि, मध्य और अन्त में राम भी लेखक ने अपना नाम नहीं दिया है । यह एक विचारणीय प्रश्न है क्योंकि मत्तारव लगपतिसिंह के जो ग्रंथ उपलब्ध हैं, उन नवमें उन्होंने अपना नाम दिया है । इस ग्रन्थ में जिन उस्ताद इनायतखान का आरम्भ में ही उल्लेख है, उनसे मध्य में भी कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है ।

(२) मृदग मोहरा

मत्तारव लगपतिसिंह के इस ग्रन्थ का उल्लेख प्रायः सभी ने किया है, पर इस प्रकार का कोई स्पष्ट ग्रन्थ अभी तक मेरे देखने में नहीं आया है । राम के राजकीय मग्न में मुझे ऐसे बहुत से पन्ने अवश्य देखने को मिले, जिसमें मृदग के प्रवेश प्रकार के घोड़ों का संग्रह है । हो सकता है, जिसको 'मृदग मोहरा' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ माना जाता है, यह मृदग के घोड़ों का संग्रह हो । इस ग्रन्थ के विषय में वर्तमान स्थिति में कुछ अधिक कहना सम्भव नहीं है ।

(३) रागमाला

मुजराजगुप्त मगीन-शास्त्र के भी आचार्य थे । इस ग्रन्थ में उन्होंने राम-गगिनिनी के स्वल्प और लक्षण लिखे हैं और उनकी गद्य में टीका भी की है । 'रागमाला' का एक उदाहरण दिया जाता है—

मगीन—रागमाला में एक है, जिसमें चौर करनी की
अर्धे में रामन बजत मन नायन ।

अलकै है सीस परि फलकै ललवानी की,
 चीर हैं विचित्र और चीर छवि छावने ।
 अलि मनमाई सदा कत मुखदाई सही,
 ओपित अधिक सुर अनत जगावने ।
 कहे कु अरेस लपसिंघ यामों रीझत हैं,
 विदित वरारी याके बोल है सुहावने ॥

याकी अर्थ ॥ काननि मैं नीके फूल है । हाथ मे चावर है, करके ककन
 वलपानि की धुनि अपने प्रीतम की सुनाय मन राजी करति है । मीस पर
 अलकै नीची फलकति है । विचित्र चीर पहिरे है । और चीर की छवि छोनक
 रिक्षारी है । कंत को बहुत नीकी लागत है । जाकी दुति काम कै जगावति है ।
 कु अरेस कवि कहत है लपसिंघ भूप यासों रीझत है । प्रगट ही वरारी के
 सुहावने बोल है । इति वरारी ॥

— फकीरचंद —

महाराज लखपतिसिंह के आश्रय मे जिन अन्य कवियों और कलाकारों
 ने उल्लेखनीय कार्य किया है, उनमे सगीताचार्य मायाराम चौहान के पुत्र
 फकीरचंद का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है । फकीरचंद अपने पिता के
 साथ आमेर से आये और महाराज के दरबार मे उनको अपनी प्रतिभा के
 विकास के लिये उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ । उन्होंने नृत्यशास्त्र पर 'नृत्य
 सुधारस मंजरी' नामक एक बड़ा सुन्दर ग्रन्थ लिखा । इस ग्रन्थ का आरम्भ
 और अंत यहा दिया जा रहा है—

आरंभ—श्री गणेशाय नम । श्री गुरुभ्यो नम । श्री आसापुरी सत्य छे ।

अचल सहर भुज मे प्रगट, सोमित सर वनराय ।

महाराज लखपति को, सदा प्रसन सुपदाय ॥

जिते नृत्य के भेद है, तिते प्रगट या माहि ।

सो सब गुरुमुख साधियै, तो रतिरस सरसाहि ॥

जो याको देषे सुनै, ताकै सब दुष जाय ।

आनद भगल हो अचल, दिन-दिन सुष अधिकाय ॥

×

×

×

×

॥ गुरुः शिष्यं विधिं ताते हरिं प्राथीत ।

मन्त्रोक्तं च नमस्ते, विद्या नमः नमः लीत ॥

मन्त्रोक्तं - मन्त्रोक्तं च नमस्ते, मन्त्रोक्तं च नमस्ते ।

मन्त्रोक्तं च नमस्ते, मन्त्रोक्तं च नमस्ते ॥

मन्त्रोक्तं च नमस्ते, मन्त्रोक्तं च नमस्ते ।

मन्त्रोक्तं च नमस्ते, मन्त्रोक्तं च नमस्ते ॥

मन्त्रोक्तं च नमस्ते, मन्त्रोक्तं च नमस्ते ।

इस विषय में यह स्पष्ट है कि एक ओर महाराज लखपतिसिंह स्वयं विद्या और कविता में सब प्रकार में प्रोत्साहन दे रहे थे तो दूसरी ओर उनके द्वारा स्थापित पाठशाला में विद्वानों और कवियों को प्रशिक्षित भी किया जा रहा था । इन पाठशाला में आचार्य कनककुशल और कुंभरकुशल भी परमेश्वर में तिनके आचार्य हुए, वे सब विद्वान और कवि थे परन्तु उनके लिए एक ही धर्म ही उपलब्ध नहीं हुए हैं ।

इस कुंभरकुशल ने महाराज लखपतिसिंह के अनेक गायक और गायिकाओं को संगीत दिया है, जिनको उन्होंने विभिन्न-विभिन्न प्रदेशों से बुलवाकर संगीत दिया था और उस प्रकार संगीत कला के विविध अंगों के उन्नयन में महाराज योगदान किया था । संगीत के सब अंगों के पूर्ण ज्ञाता इन कला-अंगों में महाराज और उनके पुत्र फकीरचंद का स्थान सर्वोपरि प्रतीत होता है । महाराज को महाराज ने आमेर में बुलवाया था । कुंभरकुशल का कहना है कि विद्यालय जिन-पाठशाला में मिलकर नृत्य किया, उस समय उनके चरणों में भी विद्यालय में उन्हें प्राप्त हो गई । उसी में महाराज संगीत और नृत्य में अधिकतर भाग और प्रयत्न करने लगे ।

नाइटों की बड़ी गुवाड़

बीकानेर

कलानुसंधान पत्रिका

निजी पुस्तकालय
 निजी पुस्तकालय
 (निजी पुस्तकालय)
 (निजी पुस्तकालय)

चर्चरी-संज्ञक अप्रकर्मित रचना

श्रीअगरचन्द नाहटा

चतुष्पथ में गाई जानेवाली रचनाओं की संज्ञा 'चर्चरी' है। चतुष्पथ के लिए 'चच्चर' शब्द का प्रयोग प्राकृत में २५०० वर्ष से भी पुराना है। ज्ञातधर्मकथाग, प्रश्नव्याकरण आदि प्राचीन आगमों और वसुदेवहिण्टी जैसे प्राचीन कथाग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। 'पाड्यसदमहर्णशे' में चच्चर का अर्थ चौहट्टा, चोरस्ता, चोक दिया गया है और 'चच्चरिया' (चच्चरिका) को नृत्य-विशेष बतलाया गया है। चच्चरि या चर्चरी के अर्थ बतलाते समय १ गीत-विशेष, एक प्रकार का गान, २ गानेवाली होली, ३. छन्दोविशेष, ४. हाथ की ताली की आवाज ये चार अर्थ दिये हैं। 'चर्चरी' शब्द का प्रयोग जितना प्राचीन है, उतनी प्राचीन चर्चरी-संज्ञक रचनाएँ नहीं प्राप्त होती।

उपलब्ध रचनाओं में आचार्य जिनदत्तसूरि-रचित चर्चरी ही सबसे प्राचीन ४७ पद्यों की अपभ्रंश-रचना है। जिनपालोपाध्याय की वृत्ति-ग्रहित यह रचना अपभ्रंश बाण्यग्र्यो में प्रकाशित हो चुकी है। सन् ११६७ से १२०० के बीच में इसकी रचना बागड़ देश के व्याघ्रपुर के धर्मनाथ जिनायतन में जिनदत्तसूरिजी ने की थी। टीकाकार ने प्रारम्भ में लिखा है: इयं च प्रथममन्जरीभाषया नृत्यदर्शिते। मन् १२९५ में रचित 'गणधर साधसतक बृहद्भक्ति' में इस चर्चरी के प्रभाव की महत्त्वपूर्ण चर्चा। उसमें लिखा है: "यहाँ ने फिर बागड़ देश में आये। व्याघ्रपुर में जयदेवाचार्य ने गेट हुई। महाराज ने जयदेवाचार्य को रुद्रारली भेज दिया और स्वयं व्याघ्रपुरी में रहकर श्रीजिनवल्लभसूरि-प्ररूपित, चैत्य-गृह दिधिस्वरूप 'चर्चरी' काव्य की रचना की। उसका गुटका बनाकर मेहर, वासल आदि श्रावकों को ज्ञान के लिए विक्रमपुर भेजा। विक्रमपुर में देवधर के पिता सन्धिप्रा के घर के पास पोषणाला में एकत्र होकर श्रावकों ने वह चर्चरी पुस्तक खोली। उसी समय उन्मत्त देवधर ने अचानक कही से आकर चर्चरी-पुस्तक श्रावकों के हाथ से छीनकर फाड़ डाली। ये लोग उस उन्मत्त का कुछ भी न कर सके। उनके पिता से शिकायत की, तो उनमें कहा, यह तो प्रमादी है; इसका क्या इलाज किया जाय, तथापि हम उसे ममता देंगे। वह आइन्दा ऐसी हरकत नहीं करेगा।" श्रावकों ने सर्वममति ने पूज्यश्री को एक पत्र दिया। उन्मत्त भेजी हुई चर्चरी-पुस्तक के फाड़े जाने का हाल लिख दिया। पत्र-लिखित समाचारों को जानकर पूज्यश्री ने दूसरी चर्चरी-पुस्तक लिखवाकर भेजी और उसके साथ पत्र में यह भी लिखा कि 'देवधर को खोदी-खरी कुछ भी मत कहना। देवधरों की गता से यह पोट दिनों में ही सुधर जायगा।' 'चर्चरी'-काव्य की दूसरी पुस्तक को पाकर नव श्रावकों ने एकत्र होकर उसे खोला और पढ़ने से सबका बर्तव्य मन्तोष हुआ। देवधर की मालूम हुआ कि दूसरी पुस्तक आ गई है, तो उसने सोचा कि 'एक तो मैंने फाड़ डाली थी।

फिर, आचार्य ने भेजी है, तो जरूर इस पुस्तक में कोई रहस्य छिपा हुआ है। जैसे भी हो, यह बात जाननी चाहिए, देखें इसके अन्दर क्या लिखा है ?' एक दिन आचार्य लोग अपने नित्य नियम से निवृत्त होकर चर्चरी-पुस्तक को स्थापनाचार्य के पास आने में रखकर पोषणशाला के कपाट बन्द करके चले गये। देवघर को मौका मिल गया। वह अपने घर के ऊपर भाग से उतरकर पोषणशाला में आ गया और यथास्थान रखी हुई उक्त पुस्तक को बड़े चाव से पढ़ने लगा। गाथाओं का अर्थ समझने से मन में आत्माद आने लगा। 'अनापतनं विभ्रम्', स्त्री पूजा न करोति, ये दो पद उसकी समझ में नहीं आये। पुस्तकालिखित जैनधर्म के उच्च रहस्यों को समझकर उसके मन में जैन सिद्धान्तों के प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गई और उसने अपने मन में यह संकल्प किया कि मैं भी इस मार्ग का अनुसरण करूंगा।"

१३वीं-१४वीं शती में रास और घवल की तरह चर्चरी भी अभिनय के माध्यम से गाई जाती थी। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में चार स्थानों में उसका उल्लेख हुआ है :

१. "पुरमध्ये स्थाने स्थाने रङ्गमरेण प्रेक्षणीयके निष्पद्यमाने, दाने च व्याप्रियमाने, चच्चर्या दीयमानाया, घवलेपु गीयमानेषु।"

२. "स्थाने स्थाने प्रमुदितजनेन दीयमानेषु प्रधानरामकेषु, नानाविषणिमार्गेषु गीयमानेषु विविधप्रवरचच्चरीश्रेणिशतेषु।"

३. "वाद्यमानासु ढोलपरम्परासु, मार्गेषु स्थाने स्थाने दीयमानासु चच्चरीषु, वाद्यमानेष्वहर्निशं द्वादशविधनान्दीर्घैषु।"

४. "दीयमानासु महामिथ्यात्वप्रतिपन्थिममन्वयनकर्तरीषु चच्चरीषु।"

२. 'प्राचीन गुर्जर काव्य-संग्रह' में सोलण कवि द्वारा रचित 'चर्चरीका' प्रकाशित हुई है। उसमें ३८ दोहे हैं। भाषा को देखते हुए यह रचना १४वीं शती की लगती है। उसमें गिरनार के नेमिनाथ की यात्रा करने की उत्कण्ठा और रास्ते के स्थानों आदि का उल्लेख है। प्रारम्भ के तीन पद्य इस प्रकार हैं :

"जिण चउवीस नमेविणु सरसइषय पणमेधि।

आराहउं गुह अप्पणउं अविचलु भावु धरेवि ॥१॥

कर जोडिउ सोलणु भणइ जीविउ सफलु करेसु।

सुम्हि अवधारह धमियउ चच्चरि हउं गाएनु ॥२॥

मणि उमाहउं अमि सुहु मोकलि करिउ पसाउ।

जिम्ब जाइवि उज्जितगिरि वदउं त्रिहुयपनाहु ॥३॥"

मुसलमान कवि अब्दुल रहमान ने सन्देसरासक के सप्तम-दर्पण में चर्चरी का उल्लेख किया है :

"चच्चरिहि गेउ नेउ हुणि करिवि तागु, नच्चोयइ अउयइ वसंत शालु।"

रचना-वर्णनः :

नेपाल के कुछ ज्ञान-मन्दार में चार अज्ञात चर्चरियाँ प्राप्त हुई थीं, उनका नाम परिचय नीचे दिया जा रहा है :

१. चर्चरी—इसमें निरन्तर, सद्गुण और स्तम्भन पार्श्वनाथ तीर्थ और चर्चरी की पूजा का उल्लेख है । ३० पद्यों की इस रचना के प्रारम्भ और अन्त के पद्य इस प्रकार हैं :

‘ममति करिणि पट्ट रिमह जिण वीरह चतण नमेवि ।

हउ चामिद मणि भाउ करि दुह जिण मणि सुमरेवि ॥१॥

मोरे नमरि पुरि जिण नुवणि, जे चाचरि पमणंति ।

पउ गइ ममणु निजारि नर ते सिव सुहु पावति ॥३०॥”

२. भर्मा चर्चरी—२० पद्यों की इस रचना में धार्मिक उपदेश विशेषकर भर्मा के (२ पद्यों का वर्णन है । प्रारम्भ और अन्त के पद्य इस प्रकार हैं :

‘सुमरे जिण निरि वीर जिणु पमणिसु सावय धम्म ।

जो पाराहउ हारु मणि, सो नरु पावउ सम्मु ॥१॥

जे आराहउ गुरु चतण, जिणवर धम्म करिणि ।

ममारिम सुहु वणभविय, गियपुरि ते विलसंति ॥२०॥”

३. जिनप्रबोधसूरि चर्चरी—रवि सोमसूति-रचित १६ पद्यों की इस रचना में जिनप्रबोधसूरि के आचार्य जिनप्रबोधसूरि का वर्णन है । जिनेश्वरसूरि के पट्ट पर उनकी आचार्यसूरि जिनप्रबोधसूरि ने स्थापित किया था । संवत् १३३१ में जिनप्रबोधसूरि का आचार्यपद-महोत्सव हुआ । यह रचना उसी के आसपास की है ।

४. जिनचन्द्रसूरि चर्चरी—जिनप्रबोधसूरि के पट्टपर जिनचन्द्र सूरि जालोर में संवत् १३४१ में आचार्यपद पर स्थापित हुए, उन्हीं का इसमें वर्णन है । २५ पद्यों की इस रचना की नेमिभूषण मणि ने बनाई है । आदि-अन्त के पद्य इस प्रकार हैं :

‘सुरज पणमनि वीर जिणु, कंचणु वणु सरीरो ।

पय पंथ पणमन यह दुग्गय दुह दव नीरो ॥१॥

पुण पय निरि जिणचन्द्रसूरि जे चाचरि पमणंते ।

जेमपण मणि दन मणइ मणवधित तिलहते ॥२५॥”

आचार्य आगे अत्रादि रचनाएँ १४वीं शती की हैं । वैसे हिन्दी में भी १४वीं शती के रचनाकारों का उल्लेख १४वीं शती तक नहीं है । पर, ऐसी रचनाएँ अधिक नहीं मिलीं । अतः गुरु-आचार्य की दो हस्तलिखित प्रतियों में तुलसीदास और बीरबरी के कुछ रचनाएँ अत्रादि-रचना चर्चरी मिली हैं ।

दुर्गादास द्वारा रचित चर्चरी इस प्रकार है :

‘शरणागते गुरुदास वृत्त ॥ गुरु मेरी ॥

दुर्गादास वृत्त छवि चिन्त चतुर मन मेरे ।

दुर्गादास वृत्त छवि चिन्त चतुर मन मेरे ।

भाल विसाल विकुट त्रिकुटी बिच तिलक रेप हवि राजें ।
 मानुह मदन तम तकि मरकत घन, जुगल कनक सरसाई ।
 सोभित श्रवनि कनक कुंडल छवि, अति लवित भुज मूल ।
 केकी ताकि ग्रहणी चाहंत मानु उर गयद प्रतिकूल ।
 चार पलक लोचन विव तारक स्याम अरुन अतिकोए ।
 मानु अलिनलिन सरद को समहि बंधु कसैन हवि सोए ।
 अरुन अघर तर डसन पतिवर मधुर मनोहर हाम ।
 मानु सुभग सरतिनम कुनसनि तटिन सहित कियो वासं ।
 बिलुलित ललित कपोलन परि कचमेवक कुटिल सुहाए ।
 मानु विधु मै, वनरह बिलोकि छवि बिपुल सुकौतिकि आए ।
 चार चिबुक मुक तुंडव निदित, सुभग सऊनति नासा ।
 तुलसीदास सुख धाम राम छवि सुपद समद भवतासा ॥१॥”

बीकानेर के महाराजा गजमिहजी-रचित दो चर्चरियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमे एक वही चर्चरी ६१ पद्यों की है । आदि-अन्त के एक-एक पद्य यहाँ दिये जा रहे हैं :

“हीरन के खम अरु मानक की खूभी ।
 नगन जटत मिदर तामे चद्रमुखी ऊभी ॥१॥
 चरन सरन गज जन-मन बंछित फल आव ।
 पदन सू निरश रक्त जेम भक्ति पावै ॥६१॥”

छोटी चर्चरी आगे पूरी दी जा रही है :

“अथ चरचरी राग भैरु ।
 अब तो लाल जागी बयो न नद जू के वाला ॥टेक॥
 मोर मुकुट कुटिल अलिक लोचन रस लाला ॥१॥
 विद्याध्ययन वेशेकति विप्रन घुनि कीनी ।
 अरुणोदय अरध नरन सूरज बौ दानी ॥२॥
 अलिन बंध छूट अब कमल न तू आए ।
 नाना कुसम गध लैन लंपट लपटाए ॥३॥
 जमुना उपकठ रव कंठी रव कीनी ।
 आठ गाठ लगे द्विरद सुनकी मद छीनी ॥४॥
 पंछी कुंज कुंजन में बेकी पिक बोले ।
 काम करन सुघर घरन धरन द्वार खोले ॥५॥
 दधि मघन गोपिन निज मंदर में कीनी ।
 राज पौर नोवत में भैरु सुर सीनी ॥६॥
 जोति चंद मंद भई उदगन गन बीते ।
 चक्षु पिय मिलन गई तरुण तिमर जोते ॥७॥

मर मर जीव जगु मर हू दिसन विचरे ।
 मरत मरि मरत तरि राज वोर मंचरे ॥१८॥
 मरत मन जगदिस नृपति नित्य कीनी ।
 मरत मरत मुनी नाम बरोजन लीनी ॥१९॥
 मरत मरत मरत ठाउ चार चतुर बाला ।
 मरत नी मरत तीर हीर गुसप-माना ॥२०॥
 मरत मरत मरत मरत मरत ले मजाई ।
 मरत मरत मरत सप्त सुरन गाई ॥२१॥
 मरत मरत मरत मरत मरत किलोत धरिये ।
 मरत मरत मरत मरत मरत करिये ॥२२॥
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत राजे ।
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत बाजे ॥२३॥
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत कीनी ।
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत मरत ॥२४॥
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत मरत ।
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत मरत ॥२५॥
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत मरत ।
 मरत मरत मरत मरत मरत मरत मरत ॥२६॥

इस तरह नाना-मनोरम रचनाएँ लपक रही हैं, राजस्थानी हिन्दी में १२वीं से १८वीं तक की मिलती हैं। नवरोज हृदय एव राग का भी नाम है।

अ. १० की भाषा, च. १०

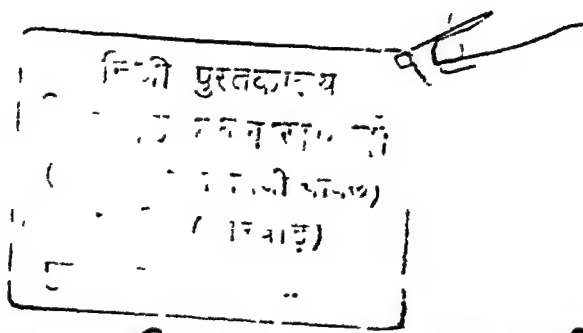
मुद्रण-कला

नं० १५० छविनाथ पाण्डेय

आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली से विकसित होनेवाली उपयोगी कलाओं में मुद्रण-विज्ञान का स्थान सर्वोपरि है। आधुनिक प्रणाली के अनुसार प्रेस-मशीनों द्वारा विषयों का विवेचन इस पुस्तक में दिया गया है। पृ० नं० ३५०। मूल्य ७.२५।

प्रकाशक।

विशारद-नाट्य-भाषा-परिषद्, पटना



गोपाल व्यास रचित अनुभव सार की महत्वपूर्ण प्रशस्ति

श्री अग्रचन्द्र नाहटा

'विश्वम्भरा' के वर्ष ५ अंक २ में डा० दिवाकर शर्मा ने अपने 'भ्रायुर्वेद को बीकानेर मण्डल की देन' नामक लेख में वंश गोपाल व्यास रचित अनुभव सार का विवरण प्रकाशित किया है। ग्रन्थ सस्कृत लायब्रेरी में इस ग्रन्थ के १६ पत्र हैं।

हमारे संग्रह में इस ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि है। यद्यपि उसके बीच के कुछ पत्र गायब हैं फिर भी अन्तिम पत्र प्राप्त होने से ग्रन्थ का रचनाकाल आदि निश्चित हो जाता है। इस प्रतिलिपि के अनुसार डा० दिवाकर शर्मा उल्लिखित ब्रह्माधिकांश हमारी प्रतिलिपि के पत्रांक १५ में समाप्त होता है। उसके बाद लक्षणभास्कर, सुदर्शनादि पूर्ण का चौथा अधिकांश छोटा ही है। पाँचवें में कुष्मांड आदि पाकों का विवरण है फिर गुटकाओं का विवरण है। इसमें एक जगह 'योग चिन्तामणि' का उद्धरण है, जो सम्भवतः जैन विद्वान् हर्ष कीति रचित ही होगा। उसका रचनाकाल भी १७वीं शताब्दी ही है। छठे अधिकांश के प्रारम्भ में शंखक शुद्धि का प्रसंग पला है। रसन्दभारण विधान के बाद स्वर्णभारण की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है उसके बाद के कुछ पत्र हमारी प्रतिलिपि में नहीं हैं। अन्त में पञ्चाङ्गादि अधिकांश १०वां पूर्ण होने के बाद प्रशस्ति ६ श्लोकों में दी गई है। इसके पहले श्लोक में कल्याणमल और रात्रिह का वर्णन है। हमारे श्लोक से बवि ने अपना वंश परिचय दिया है। पाँचवें श्लोक के अनुसार ग्रन्थ की रचना मवत् १६५६ में हुई थी व छठे श्लोक में प्रभासतीर्थ में श्री सोमनाथ के नानोप्य में इस ग्रन्थ के पूर्ण होने का उल्लेख किया गया है। हमारी संग्रह की प्रतिलिपि नं० १७७१ फागुन सुदी १ को हाजीखान में पंडित सुवितसुन्दर मणि ने लिखी है। अर्थात् मियु

दत्त मन्त्र के द्वारा चिन्ती हुई यह प्रति महत्वपूर्ण है। बीच में कुछ पन्ने १९० विभिन्न प्रमाणों द्वारा पूर्ण प्रति को गोज प्रायश्चित्त है।

इस विश्वम्भर नामी ने बोकानेर मण्डल में रचित आयुर्वेद के विविध ग्रन्थों के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ का जो परिचय दिया है वह विस्तृत नहीं है परन्तु समय जैन ग्रन्थों में प्राप्त प्रति में जो प्रगति है उसमें महाराज रायसिंह के काल की और बोकानेर के अन्य नरेशों के काल की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है इसलिए हम उस प्रमाण को अधिकतम रूप में उद्धृत कर रहे हैं—

श्री गोपाल वंश कृत

अनुभवसारः

गिरूषुशस्त्रिभवनरत्नपाणिकुम्भप्रदेश. शिवमातनोतु ।

म शिवनलनोदनैकदशः, श्रीहुन्दिराजस्तव^१ राजसिंहः ॥१॥

कपूरपूरविशरोत्तनसदशुकात्मा,

श्रीशारदा वरकमण्डलुदण्डहस्ताम् ।

पद्मावती प्रवरपुस्तकरम्यपाणि,

नित्यं शये शयनलद्विमलाक्षमालाम् ॥२॥

श्रीगाम्बरी मन्त्रपाददकप्रनूपी,

पद्मावती मदविद्युन्निर्गतेनपद्मा ।

दन्तोन्नमदुग्धुमृगपत्रनाघिलक्ष्मी,

श्री मणिणी मुगलम्भदिरा श्रयामि ॥३॥

मन्त्रोन्नमनोन्नितनालदेश, नमामि विष्णोर्मणिनीं मुदाऽहम् ।

दत्ताः^२ प्रमादेन हि मन्दबुद्धि-वाचा विलासालम्भतेऽनवधानम् ॥४॥

नमः^३ जयति मातुर्ननुमिर्मांमितांशः^४,

१. श्री हुन्दिराज मह० ।

२. दत्त मह० ।

३. जयति मह० ।

४. मांमितांश मह० ।

कमलनिकरवन्धुः कर्मसाक्षात्प्रदेशः^१ ।

यदुदयमधिगम्य प्राप्तबुद्धिप्रकाशा,

निगमगदितमार्गे^२ साधवः सन्धेरन्ति ॥५॥

सकललोककृजां दलनोद्यतो, दिविपदा मिपजो करुणाकरो ।

सकलवैद्यपयस्य च दशंको, रचितम् अनुषो हृदये दधे ॥६॥

घनव्रन्तरि^३ देववर नमामि, क्षीराब्धिसम्भूतमतीवस्तनम् ।

यन्नाममात्रेण समस्तरोगा-स्यस्यन्ति सिंहादिव उत्तनागाः ॥७॥

हारीतमेगिन् भृगुसुश्रुतो^४ च, मिषग्वरिष्ठं चरकं मुनीन्द्रम् ।

पाराशर^५ वैद्यवराननेकान्, वन्दामहे चन्द्रितपादपदान् ॥८॥

यदपि किमपि काव्यं कर्तुं कामोऽल्पबुद्धिः,

क्षितिपतिमुकुट श्री राजसिंहायज्ञाऽऽहम् ।

तदपि समुपहासे^६ नैव यास्यामि यस्मा-

न्मनसि जनकं मेसा व्यासपादावलम्बः ॥९॥

श्री जैत्रसिंहः सुभरः^७ परेषा-मुन्मूलने दत्तकरीन्द्रमुख्यः ।

सत्सूत्रबन्दिप्रवरान्दकेभ्यो, नित्यं प्रजापालनतत्परोऽभूत् ॥१०॥

तत्सूत्ररत्यन्तगुणः परोतः, कल्याणनामा कलिकल्पवृक्षः ।

यश्चक्रवर्ती जितसर्वभूषो^८, वीरो महात्मा मतिमान् बभूव ॥११॥

श्री राजसिंहः किल^९ तस्य सूनुः, संशोभते विक्रमभानुतुल्यः ।

सौभाग्यसिन्धुर्न परोऽस्ति दाता, यस्मात्प्रवीणोऽपि न चांस्तिलोके ॥१२॥

इभ्रामनामा यवनाधिपोऽपि श्रीराजसिंहेन हुशेनपूर्वः ।

जितो बल्लीमानहितः कठोऽप्या, पलायितः स्वां परिहृत्य भूतिम् ॥१३॥

तत्तत्संचारु^{१०} दाख्यं गिरीन्द्रं गृहीत्वा, सुरघ्राणनामावनीयं व्यजेष्टम् ।

शिरोहीपति^{११} पादप मानतं त-मघाऽतिष्ठिषद् यः पुनः राजसिंह ॥१४॥

१. कर्मसाक्षीग्रहेणः भन्त० ।

२. मार्गे भन्त० ।

३. परासर भन्त० ।

४. भूषो भन्त० ।

५. कलि भन्त० ।

नरेश कीर्तिन नगरिनेन, मवेष्टिता लाभपुरी बलेन ।
 दत्तात्रेय नरनेन विद्याय, ता नीलमत्याजयदेकवीरः ॥११॥
 पुरीदम'प्यो ददनापिनाय, काचित्ल्लदेशे समरं विधाय ।
 दत्तो नृपेन्द्रेण बनेन बोर', श्री राजसिंहेन बभूव येन ॥१२॥
 छतः^१ गाजिमानौ नरेन्द्रो विजित्य, हठात्संप्रवृष्य प्रणीतो स्वदेशम् ।
 दत्तः सिन्धुभूपी स्वकीयो विधाय, समास्थापितो राजसिंहेन भूयः ॥१३॥
 तत्तच्चन्द्रसेनस्ततो भारभूयः, सुतोजाममुख्याः समामण्डलेशाः ।
 यराश्वाच्चराहान्महाशिवशृङ्गा, महामत्तदन्ताचलाय सम्प्रदाय ॥१४॥
 तथा स्वीयकृपा च दत्तातिरम्या^२, महानध्यमाणिमयमुक्ताफलादीन् ।
 कर दत्तवन्तः मदा वापिक हि, भय सत्यजन्तीह चाम्ये नरेन्द्राः ॥१५॥
 करयाणकत्तद्रुमनामदान, श्री लाभपुर्या^३ इवहित तु येन ।
 श्रीराजराजापिराजसिंह-भूपेन चोकानगराधिपेन ॥१६॥
 दानानि येनैव च पोटशात्र, प्रकृष्टपुण्यानि ततः कृतानि ।
 नेनैव गोदन्तिनुरङ्गमाणा, सोवर्णसत्कुण्डलदक्षिणाभिः^४ ॥१७॥
 निन्ताता महान्वतो येन तत्र, महाद्धोदये पवणीशेन राज्ञा ।
 महादक्षिणादिप्रदानप्रयोगैः^५, कृता राजसिंहाधिराजेन नूनम् ॥१८॥
 पुत्रारे विप्रवयंमस्तुने, सर्वतीर्थवरतः शिरोमणौ ।
 भूमि^६ दानमपि तत्रवैदवि^७, वाडबाय विधिना समर्पितम् ॥१९॥
 श्रीनारायणदानमत्र विहितं पश्चाच्च काष्णार्जिनं,
 दान तीर्थवरे महीपतिना येनोज्जयिन्याह्वये ।
 श्रीपद्माश्वनीप्रभूतप्रियवीनाथैः परैः पापिभि-
 नैराकारि कर विना मुकृतिना कार्ये च येनाश्वनी ॥२०॥

१. पुरी प्र० ।

२. दत्ता प्र० ।

३. दत्तात्रेय प्र० ।

४. दत्तात्रेय प्र० ।

५. दत्ता प्र० ।

६. दत्ता प्र० ।

रत्नगर्भा हि तत्पत्नी, सूरसिंहमजीजनत् ।
 यान्तु मूर्तिमती लक्ष्मी, केचिदाहुर्हरिप्रियाम् ॥२५॥
 यदीयः सुतः सूर्यसिंहामिधानो, महाबुद्धिमान् पुष्पवाणाभिरामः ।
 महादीर्घबाहुः कुमारोऽपि दक्षः, स्वयं शत्रुसघातं विजेतुं प्रवृत्तः ॥२६॥
 कीर्तिर्मनोज्ञा महती विशुद्धा, विराजते यस्य भुवि प्रसिद्धा ।
 चवतुं न शक्या विबुधैर्हि घाटयन्मादाय चोक्ता कियतो मयाऽय ॥२७॥
 महादेवनामायं वदाम्य, सदा पण्डितप्रातस्तुत्य बुद्धिम् ।
 भिषक्शास्त्रवेत्तारभीय नमामि, मुदा स्वयंघर्मैरत सर्वं पूज्यम् ॥२८॥
 दृष्ट्वा जन्तूनामयेनाभिभूतान्, येसा नाम्नः पुत्र एवोपकृत्यं ।
 गीपालाख्य सर्वभैषज्यवेत्ता, धीमन्नुनं ग्रन्थमेनं करोति ॥२९॥
 नाम्नाऽयमेवाऽनुभवस्य सारो, येनैव साभ्यासमल भवेच्च ।
 कण्ठे कृतः कोस्तुमस्तुत्य एव, चाचन्द्रतारं जयतात्^१ प्रकृष्टः ॥३०॥
 दद्याधिकारग्रन्थोऽयं, गदग्रन्थनिवारकः ।
 यस्य स्यात्तदभिज्ञान, स ना नून भिषग्वरः ॥३१॥
 आसवस्तदनु तैलं सपिपी, क्वाथकस्तदनु पाक एव च ।
 धातुसग्रहमहाधिकारकः, सप्तमश्व सुजलाधिकारकः ॥३२॥
 मांसाधिकारस्त्वथ चाष्टमः स्मृतो, दुग्धाधिकारो नवमः प्रकीर्तितः ।
 भूमिन्द्रपक्वान्नमहाधिकारको, दशाधिकाराः क्रमतो निरूपिताः ॥३३॥

अन्तिम प्रशस्ति—

जीयाच्छीनृपचक्रमस्तकवलद्भूपामणीनाङ्गण-
 शचञ्चोद्वपतरापितर्हि सततं नीराजिनाहितह्वयः ।
 कल्याणस्य महीपुञ्जविलसत्कीर्तः सुत सन्मतिः,
 काव्यालकृतिचञ्चुरः सानुज श्रीराजसिंह कृती ॥१॥
 भारद्वाजसुगोभजः समभवत् कोकाहूयः सद्द्विजः,
 श्रीमत्पुष्करणाख्यनिर्मलतरङ्गाते सदा मण्डनम् ।
 टंसालीति विचक्षणैर्निगदितो लोके भिषक्पण्डितः,
 श्रीधन्वन्तरितुष्य एव सुतरां स्टाचारनिष्ठः किल ॥२॥

मन्दारमय मन्दिरमये सा मयः सुन्दरः,

श्रीमदुदयनतिना समो द्विजवरः श्रीमद्वदान्यापणो ।

श्रीमद्वदान्यापणोः प्रभुरिति प्रीतिगीत एवाऽन यो,

नित्यं मरुविमिजं गत्यतिरितिश्चामीन्महामाग्यवान् ॥३॥

मन्दारमय मन्दिरमये श्रीराजसिन्हाजया,

प्रमोदय रचितः प्रकटमतिना गोपालनाम्ना ततः ।

सोक्तानामुपकारकायनिपतं लोके मतीनामलं,

सुविन सुप्रसूतयामटादिविहितामादाय किञ्चत्किञ्च ॥४॥

श्रीमद्वदान्यापणो रसवासभूमिते, गतेऽन्देऽय एकेन्द्रकालात् ।

भूरसराणेन्दुमितेऽय माघ, कृते द्वितीया रविपुष्पयुक्ते ॥५॥

विष्णुमन्दुने करणे गंगान्ये, श्रीमद्वदान्यापणे विमले सुतीर्थे ।

श्रीसोमनाथस्य समीपतो वै, ग्रन्थः किलाऽयं सुसमाप्तिमाय ॥६॥

इति श्रीश्रीकावसे श्रीमन्पुष्पकुटुम्बनिश्रीमद्वाराजाधिराज-

श्रीराजसिन्हाकारिणे गोपालवन्द्यकृतावनुभवसारनाम्नि

ग्रन्थे द्वापिकार समाप्तः ।

समाप्तः समाप्तः अनुभवसारः ।

म० १७७१ फा० सु० १ ति० हाजीखान मध्ये । पं० युक्तिमुन्दरगणि लि० ॥

पत्राङ्क १२ पर - "१७७२ वर्षे च० सु० १ लि० महिमाविजयेन । हाजीखाने ।

[श्री प्रमद जैन ग्रन्थालय, योकारनेर क्रमांक ६३२७; पत्रांक १ से २१, हाजीखाना के पास है । पातु अपिकार में स्वर्णमाला के दो पत्र हैं, पश्चात् अपूर्ण हैं । ग्रन्थ दो पत्र पत्रांक रहित हैं ।]



